समकालीन महिला लेखिकाओं की चयनित कहानियों में सामाजिक समस्याएँ

HIN-675 शोध प्रबंध

श्रेयांक: 16

स्नातकोत्तर कला (हिंदी)

की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोधार्थी

अक्षा दशरथ गांवस

अनुक्रमांक: 22P0140001

PR Number: 201900625

मार्गदर्शक

प्रो. वृषाली मांद्रेकर

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य संकाय

हिंदी अध्ययन शाखा

गोवा विश्वविद्यालय

अप्रैल 2024

परीक्षक :

GOA UNIVERSITY
SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE
TALEIGAON PLATEAU

Seal of the school

DECLARATION BY STUDENT

I hereby declare that the data presented in this Dissertation report entitled, Samkalin Mahila Lekhikao ki chaynit kahaniyon me Samajik Samasyae is based on the results of investigations carried out by me in the Discipline of Hindi at Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University under the Supervision of Prof. Vrushali Mandrekar and the same has not been submitted elsewhere for the award of a degree or diploma by me. Further, I understand that Goa University or its authorities will be not be responsible for the correctness of observations/experimental or other findings given the dissertation. I hereby authorize the University authorities to upload this dissertation on the dissertation repository or anywhere else as the UGC regulations demand and make it available to any one as needed.

Gawas

Aksha Dasharath Gawas

Date:

Place: Goa University

COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation report Samkalin Mahila Lekhikao ki chaynit kahaniyon me Samajik Samasyae Is a bonafide work carried out by Ms Aksha Dasharath Gawas under my supervision in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of Master of Arts in the Discipline of Hindi at the Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University.

Prof. Vrushali Mandrekar

Date :

Signature of Prof. Anuradha Wagle

Dean, SGSLL, Goa University

GOA UNIVERSITY SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE TALEIGAON PLATEAU

School Stamp

Date:

Place: Goa University

अनुक्रम

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
	Acknowledgment	ii & iii
	अनुक्रम	iv & v
	कृतज्ञता ज्ञापन **प्राक्कथन**	vi vii & viii
1	**समकालीन कहानी : अवधारणा एवं स्वरूप** 1.1 समकालीन : अर्थ एवं स्वरूप 1.2 समकालीन कहानी का स्वरूप 1.3 समकालीन कहानी आंदोलन 1.3.1 समकालीन कहानी आंदोलन की सीमा 1.4 समकालीन कहानी की विशेषताएँ 1.5 समकालीन कहानी में लेखिकाओं की भूमिका	
2	**सामाजिक समस्या : अवधारणा एवं स्वरूप** 2.1 सामाजिक समस्या : अर्थ, व्याख्या एवं अवधारणा	

	2.2 सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति 2.3 सामाजिक समस्याओं के प्रकार 2.4 सामाजिक समस्याओं की विशेषताएँ 2.5 सामाजिक चेतना 2.6 सामाजिक समस्याओं का समाधान	
3	**समकालीन कहनियाँ : सामाजिक समस्याएँ** 3.1 मध्यमवर्गीय समाज की मानसिकता 3.2 पितृसत्तात्मक समाज 3.3 किशोरावस्था की समस्याएँ 3.4 वृद्ध जीवन की त्रासदी 3.5 अंधविश्वास का विरोध 3.6 पारिवारिक समस्याएँ 3.7 नई तथा पुरानी पीढ़ी में मतभेद 3.8 शिक्षित बेरोज़गारी 3.9 आर्थिक समस्या 3.10 राजनीतिक यथार्थ	
4	**भाषिक संरचना** 4.1 तत्सम-तद्भव शब्दों का प्रयोग 4.2 विदेशी शब्दों का प्रयोग	

	4.3 ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग 4.4 निरर्थक शब्दों का प्रयोग 4.5 द्विरुक्ति शब्दों का प्रयोग 4.6 मुहावरे-लोकोक्ति का प्रयोग 4.7 शैली	
5	**उपसंहार**	
6	**संदर्भ**	

कृतज्ञता

‘समकालीन महिला लेखिकाओं की चयनित कहानियों में सामाजिक समस्याएँ’ इस लघु शोध प्रबंध को पूरा करवाने में मैं अपनी मार्गदर्शिका प्रो वृषाली मांद्रेकर जी का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर शोध प्रबन्ध के सम्बन्ध में मुझे परिप्रेक्षीय चेतना प्रदान की। उन्होंने मुझे समकालीन लेखिकाओं की कहानियों पर काम करने का प्रोत्साहन दिया और समय- समय पर मार्गदर्शन किया, जिससे लेखिकाओं के साहित्य से अवगत होने का मौक़ा मुझे प्राप्त हुआ।हिंदी अध्ययन शाखा के निदेशक डॉ. बिपिन तिवारी ने भी मेरा मार्गदर्शन किया। हिंदी विभाग के अन्य प्राध्यापक आदित्य सिनाय भांगी, दीपक वरक, ममता वेर्लेकर, मनीषा गावडे तथा श्वेता गोवेकर जी ने भी मेरा पूरा सहयोग किया उन सभी के प्रति मैं मेरी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी कृतियों का उपयोग इस लघू शोध प्रबन्ध रचना में उद्धरित है। मैं उन सभी विद्वानों, गुरूजनों के प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिनका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग मुझे अनुसंधान कार्य के समय प्राप्त हुआ। तथा अंत में गोवा विश्वविद्यालय का धन्यवाद जिसकी विद्वत परिषद ने लघु शोध प्रबंध को पाठ्यक्रम में शामिल कर मुझे अपनी क्षमता, प्रतिभा को परखने का अवसर प्रदान किया। मैं गोवा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय,

के समस्त कर्मचारियों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में रूचि लेकर तथ्यों के संकलन में मुझे सहयोग प्रदान किया।

भूमिका

आधुनिक साहित्य में कहानी का महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया गया है। कविता और साहित्य की अन्य विधाओं से अधिक अभिव्यक्ति के सरल माध्यम के रूप में आज कहानी आ गयी है। कहानी का सीधा संबंध आम आदमी से होता है। कहानी में व्यवस्था, सत्ता और सामाजिक अवस्था में होनेवाले कई प्रकार के अत्याचारों और अनाचारों पर आक्रोश उडाने की ज़्यादा अभिव्यक्ति-क्षमता है। समकालीन महिला लेखन में पुरुष वर्चस्व के प्रति रोष, संघर्ष एवं अपनी अस्मिता की स्थापना का मोह और भी बलवत्ती होता दिखाई देता है। समकालीन लेखिकाओं में प्रमुख हैं मृदुला गर्ग, ममता कालिया, दीप्ति खण्डेलवाल, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्‌गल, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा, कुसुम अंसल, मृणाल पाण्डेय, मेहरुन्निसा परवेज़, निरुपमा सेवती, नासिरा शर्मा, गीतांजली श्री, अनामिका, अलका सरावगी, महुआ माजी आदि। यहाँ जिन महिला लेखिकाओं का उल्लेख छूट गया, उनका साहित्य भी अपने आप में महत्वपूर्ण है। इन सभी ने अपनी रचनाओं में सामाजिक मुद्‌दों को अपने कहानियों में उठाया है। सभी लेखिकाएँ अपने आप के साहित्य के माध्यम से मशहूर है लेकिन इस लघु शोध प्रबंध में सभी लेखिकाओं के साहित्य को प्रस्तुत करना मुश्किल था इसीलिए मैंने कुछ लेखिकाओं को चुनकर मेरे शोध विषय प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय में समकालीन कहानी का स्वरूप प्रस्तुत किया है क्योंकि समकालीन लेखिकाओं के साथ साथ समकालीन कहानी का किस प्रकार निर्माण हुआ कौन कौनसे आंदोलन थे वह दौर कैसा था कहानी का विकास किस प्रकार हुआ यह हम प्रथम अध्याय से जान सकते है। द्वितीय अध्याय में सामाजिक समस्या क्या है उसकी परिभाषा विविध विद्वानों द्वारा दिये गए मत तथा समस्याओं का समाधान किस प्रकार से किया जा सकता है इसकी जानकारी द्वितीय अध्याय में संकलित है। तृतीय अध्याय में समकालीन लेखिकाओं के साहित्य में किस प्रकार समाज के सचाई का आयना दिखायी देता है इसका चित्रण हुआ है। तथा चतुर्थ अध्याय में भाषा शैली का महत्व स्पष्ट कर कहानियों कौनसे अलंकार , शैली , तथा अन्य प्रकारों का सहारा लेकर अपनी कहानियों को सजाया है इसका प्रस्तुति करण हुआ है।

प्रथम अध्याय

समकालीन कहानी : अवधारणा एवं स्वरूप

<u>समकालीन कहानी : अवधारणा एवं स्वरूप</u>

प्रस्तावना

कहानी हर युग और हर पीढ़ी को अत्यंत प्रभावित करती आयी है। आज भी उसका प्रभाव बहुत अधिक है। लेकिन प्राचीन काल से वह समय के अनुसार अपने को सजाती-सवारती आयी है और इस प्रकार वह आज संपुष्ट और संश्लिष्ट बन गयी है।

"कहानी" एक अक्षय निधि है। इसकी परिसमाप्ति भी दुरुह है। अनादि- काल से कहानीकार अनेक देशों और अनेक भाषाओं में मानव-जीवन की रहस्यमयता और उसके परिवेश के रहस्यों का अन्वेषण करता आ रहा है। मनुष्य के हृदय में अन्यों को जानने और अपनी कहने की जो "उत्सुकता" जगती है, वही कहानी को जन्म देती है।

आधुनिक युग में साहित्य में विभिन्न वाद और आंदोलन तीव्र गति से निर्मित हुए है। मानवतावाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद, गांधीवाद आदि वैचारिक वादों ने हमारे साहित्य को प्रभावित किया है, साहित्यकारों को नई जीवनदृष्टियाँ प्रदान की है। अतः हिंदी कहानी के विकासमितिज पर भी अनेक आंदोलनों का उदय तथा अवसान हुआ है।

यह स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी कहानी का जो तीव्रगति से विकास हुआ है, उसमें "नई कहानी", "अकहानी", "सचेतन-कहानी", "सहज-कहानी", "समांतर-कहानी", "जनवादी कहानी", "सक्रिय-कहानी" आदि विभिन्न आंदोलनों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

प्रारंभ से कहानी का मूल स्त्रोत एक ही है। डॉ. पुष्पपाल सिंह ने "समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ रचना में कहा है कि, "परिस्थिती के अनुसार जो बदलाव की अपेक्षा व्यक्त की गयी है, वही आंदोलन के सम में उभर गये हैं।"१ इस दृष्टि से समकालीन कहानी आंदोलन भी इसी प्रकार का एक आंदोलन है। लेकिन ये सभी आंदोलन एक विशाल पेड की अनेक कहनियों के समान हैं, क्योंकि उनका अपना अलग अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

1.1 समकालीन का अर्थ एवं स्वरूप :

'समकालीन' अंग्रेजी शब्द कॉन्टम्परेरी का समानार्थक है जिसका अभिप्राय है- सम-काल, अर्थात् जो काल या 'समय के साथ-साथ' हो। इस प्रकार 'समकालीन' का अर्थ ग्रहण किया जा सकता है 'समय के साथ'। समकालीन शब्द के हिन्दी आलोचना - जगत में अनेक अर्थ प्रयुक्त हुये हैं 'नयी', 'आधुनिक', 'समसामयिक' और 'वर्तमान' आदि।

धर्म, संस्कृति, अर्थतंत्र का विकृत रूप या आर्थिक असन्तुलन, भ्रष्ट व्यवस्था, सत्ता की असफलता आदि कुछ ऐसे तीखे अनुभव थे, जिसने समकालीन बोध को जन्म दिया। इसी से नयी कहानी के उपरान्त इस बोध विशेष की कहानी को समकालीन कहा गया। आज से वर्षों पहले लिखी गई कहानी उस समय समकालीन थी, आज लिखी जाने वाली कहानी भी समकालीन है हर युग का अपना समकालीन होता है और समकालीन का अपना पूरा युग।

डॉ. किरण बाला ने समकालीनता का अर्थ "जो इस काल में है"२ बताया है। साथ ही ऐसा कहा है कि इसमें जड या अचेतन व्यक्ति की अपेक्षा, इस काल में केंद्रीय महत्त्व रखनेवाली समस्याओं से समकालीनता उत्पन्न होती है।

अतः समकालीन याने "जो इस काल में है"। साथ ही जिसमें इस काल की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का चित्रण हुआ है, वही समकालीनता है।

समकालीन की परिभाषा :

समकालीन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार दी है।

१)डॉ. किरण बाला ने समकालीनता की परिभाषा इस प्रकार बतायी है, "समकालीनता एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियाँ का मुकाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों मैं भी कैन्द्रीय महत्त्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।”

उपर्युक्त परिभाषा मेंकाल की महत्त्वपूर्ण समस्या और चुनौती पर बल दिया गया है। उनकी समझ से ही समकालीनता उत्पन्न होती है। प्रेरणा देने की दृष्टि से यह बात सही लगती है।

२) डॉ.चंद्रशेखर के अनुसार समकालीनता की परिभाषा इस प्रकार है, "समकालीनता समसामयिकता की आधुनिकता है अर्थात उसकी सप्रश्नता अथवा प्रश्नशीलता है।” उन्होंने "समकालीनता" को "आधुनिकता" की प्रक्रिया को नया अर्थ प्रदान करनेवाला माना है।

३) डॉ.गंगाप्रसाद विमलजी के अनुसार समकालीनता की परिभाषा इस प्रकार है, "समकालीन का अर्थ यह नहीं है कि दो व्यक्ति एक विशेष काल-खंड में रहे हो और संयोग से वे रचनाशील भी हों। जिस समकालीन की चर्चा सन् ६० के बाद की कहानी के सम्बन्ध में की जा रही "शब्दार्थ की धारणा" से समबन्ध नहीं है, अपितु वह जीवन समानधर्मी रचनाकारों के बोध की समानधर्मिता है।" इसमें उन्होंने समकालीनता को आधुनिकता की एक पहचान कहा है।

४) डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्यायजीने समकालीनता की परिभाषा इस प्रकार बतायी है," "समकाल" शब्द यह बताता है कि, काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलटकर कहें तो कहेंगे कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर उसे अंकित-चित्रित करके ही हम "समकालीनता" की अवधारणा को समझ सकते हैं। शर्त यही है कि लेखक आज के [देश-काल-स्थित] मनुष्य के अंकन में वस्तुगत रहे यानी उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानवबिम्ब उभरता हो, वह वास्तविक जीवन के निकट हो।"

उन्होंने "समकाल" और "समकालीनता" का अर्थ बताते हुए यथार्थ चित्रण पर बल दिया है।

५) डॉ. नरेंद्र मोहन ने समकालीनता की परिभाषा इस प्रकार बतायी है, "समकालीनता का अर्थ किसी कालखंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण-भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्त्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकते का विवेक अर्जित करना है।....... समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।"

उपर्युक्त परिभाषा में श्रेष्ठ साहित्य की आवश्यक बातों के अनुसार, अपने युग की सामयिकता को चित्रित करते हुए उसमें चिन्तना का अंश जोड़ना चाहिए, इस बात की ओर संकेत किया है।

1.2 समकालीन कहानी का स्वरूप

कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी मनुष्य की भाषा यह एक ऐसी विद्या है जो कि मानव जीवन के अनुभवों को यथार्थ व संवेदना के धरातल पर अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। जीवन की विविध परिस्थियों और परिवर्तन को यह सरलता व सहजता से अभिव्यक्ति करने में जितनी सक्षम है, उतनी अन्य विद्या नहीं। जीवन में परिवर्तन के अनुसार कहानी के नामक रूपों में भी परिवर्तन आता गया। इन्हीं परिवर्तनो में सन् 1965 में कहानी के रूप में जो परिवर्तन परिलक्षित हुआ उसे हम समकालीन कहानी के नाम से जानते है। 'नई धारा' का समकालीन कहानी विशेषांक फरवरी-मार्च 1966 में प्रकाशित हुआ था, जो इस आन्दोलन के मुददो को लेकर विचार करता है। समकालीन कहानी को जानने पूर्व हमें समकालीन शब्द कर अर्थ स्पष्ट होना चाहिए। समकालीन का अर्थ एन साईक्लोपीडिया अनुसार इसी काल खण्ड में होने वाली घटना या प्रवृति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति। समकालीन को हम समसामयिक के रूप भी में भी जान सकते है ।

डॉ० चन्द्र भूषण तिवारी के अनुसार "तात्कालिकता अक्सर सूचनाओं की प्रक्रिया होती है, खुद से अलग होकर, अक्सर बाहरी सूचनाओं की प्रतिक्रिया ओर प्रायः एक आस्थाहीन मानस में घर कर लेती है। समकालीन इससे भिन्न किसी ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग होती है। किसी समाज का व्यापक जन-मानस उसी में विम्बित होता है। तात्कालिकता एक प्रकार का पलायन होती है। इतिहास की उस मुख्य धारा बातों से नजर बचा लेने की कोशिश, जो किसी काल से गुजरती है, उससे विषयांतर।" हिन्दी कहानी 1950 तक मुख्यतः वैचारिक प्रतिबद्धताओं से जुड़ी रही। 1956 में 'नयी कहानी' पत्रिका का विशेषांक श्री भैरव प्रसाद गुप्त के सम्पादन में प्रकाशित हुआ। इसी विशेषांक के आधार पर आगे वाले कहानीकारो को नयी कहानी के नाम से संज्ञापित करते हुए परम्परागत कहानी की अन्तर्वस्तु और शिल्प को नकार दिया गया। नयी कहानी भोगे हुए यथार्थ को स्वीकारती है अतः अनूभूति की प्रमाणिकता नयी कहानी की आधार भूत घोषणा थी। इसी प्रकार नयी कहानी हिन्दी कहानी की विकास धारा को एक नीवन आवास प्रदान करती है। लक्ष्मी सागर वाष्र्णेय ने ही कहानी को 'स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी' कहना अधिक उचित' सार्थकव महत्वपूर्ण समझा है। कुछ विद्वानो ने इस नामकरण पर आपत्ति भी प्रकट की। छठे-सातवें दशक में नयी कहानी की प्रतिक्रिया में ' अकहानी आन्दोलन' का जन्म हुआ। गंगा प्रसाद विमल इस नामकरण से सहमत है। सन् 1965-1970 के

मध्य से अब तक की कहानी को समकालीन कहानी की संज्ञा दी जाती है।

‘'समकालीन कहानी' के अन्तर्गत विभिन्न कहानीआन्दोलनों को जन्म हुआ। जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है:- सहज कहानी के बारें में अमृतराय जी कहते है' मोटे रूप में इतना ही कह सकते है कि सहज वह है जिसमें कोई आडम्बर नहीं, बनावट नही, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रादोष नही है, आइने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने ही अंग-प्रत्यग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नही है, किसी का अन्धा अनुकरण नही है।"

सहज कहानी कल्पित अनुभूतियो, नारों और वैचारिक प्रतिबद्धता का विरोध करती है। सन् 1972 में 'समान्तर कहानी' आन्दोलन का उदय हुआ। कमलेश्वर इस आन्दोलन के सूत्रधार थे। इस कहानी में सामाजिक सरोकरों को जोड़ते हुए आम आदमी की प्रतिष्ठा का स्तर मुखरित हुआ। सन् 1974 में डॉ. महीप सिंह के नेतृत्व में 'सचेतन कहानी' ने जन्म लिया। इसका मूल स्वर यहीं था कि जीवन स्वयप् भी जीयो ओर दूसरों को भी जीने दो। यह नये परिप्रेक्ष्य तथा नये अन्वेषण की गत्यात्मक कहानी है। इस कहानी ने जीवन और साहित्य के बीच फिर से सम्बन्ध स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया। सन् 1978 'सक्रिय कहानी' आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। यह

कहानी मनुष्य को अपने अन्दर की कमजोरियों से लड़ने के लिए प्रेरित करती है। राकेश वत्स सक्रिय कहानी को प्रस्तावित किया था। उनका कहना है:- "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है- आदमी की चेतनात्मक उर्जा जीतन्तता की कहानी। उस समझ, अहसास और बोध की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियो के खिलाफ खडा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेती है।"

जनवादी आन्दोलन को 'समान्तर' और 'सक्रिय' कहानी का जनवादी संस्करण माना जाए तो गलत न होगा। इसमें आम आदमी के संघषों को केन्द्र मे रखा गया। यह आन्दोलन 'समकालीन कहानी' आन्दोलन का महत्वपूर्ण और बड़ा भाग है। 'समकालीन कहानी' का मुख्य पात्र निम्न मध्यमवर्गीय मनुष्य ही है जो अपने परिवेश से सम्पृक्त और सामाजिक जड़ो द्वारा अस्त्वि की खुराक पा रहा है। समकालीन कहानी में मध्यमवर्गीय ससंकट मनुष्य को सांवदेनिक प्रामाणिकता के साथ चित्रित करने पर बल देती है अस्मिता संकट के प्रश्न से यह सम्बधों की भी पुनर्व्याख्या करती है। इसमें मानव मूल्यों में परिवर्तन और अस्तित्व संकट की गुंज स्पष्टतय दृष्टिगोचर होती है। यह सामन्त वादी मूल्यों का विद्रोह करती हुई नवीन चेतना का विकास करती है। स्त्री को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तो मूल्य

चुकाना पड़ता है उसकी उस छटपटाहट तक पहुचनें की कोशिश भी समकालीन हिन्दी कहानी ने की है। समकालीन हिन्दी कहानी का विकास उस समय हुआ है। जब हमारी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र को बुनियादी रूप से नये प्रकार के साम्राज्यवाद ने प्रभावित किया हुआ है। संक्रमण काल की इस स्थिति में जहाँ नारी देह सौन्दर्य प्रतियोगिताओं की तरफ आकर्षित है, समाज के पिछडे व दलित वर्ग शोषण की चक्की में पीस रहे है। समकालीन हिन्दी कहानी ने मानव को आस्था विश्वास का स्वर देने की कोशिश की। समकालीन हिन्दी कहानी अस्तित्व एवं अनुभूति के इस दोहरे संकट से गुजरती हुई कहानी है। यथार्थ की प्रमाणिकता का तथ्य समकालीन हिन्दी कहानी में नये स्वर के साथ उभरा। इसमें यथार्थ की स्थितियों के उन कारणों की तह में जाने का आंकलन है, जिनसे स्थितियाँ उत्पन्न हुई।

1.3 समकालीन कहानी आंदोलन

स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक आंदोलन उभर आये हैं। हर आंदोलन के प्रणेता अलग है। उसी प्रकार डॉ. गंगाप्रसाद विमलजी ने अपनी विशिष्ट पहचान कराने के हेतु से जो कहानी आंदोलन खड़ा किया, वही समकालीन कहानी आंदोलन है।

डॉ. गंगा प्रसाद विमलजी के शब्दों में "समकालीन कहानी रचना की कोई नई विधा नहीं है, न ही नये लोगों का कोई रचनात्मक आंदोलन इसे कहा जाना चाहिए, अपितु वे सब रचनाकार जो कम से कम रोमांटिक भाव-बोध से तथा परम्परागत स्थिती से अलग है और कथा रचना में अपने समग्र नयेपन का आग्रह रखते हैं- समकालीन रचना के रचनाकार है।" ९ अतः समकालीन कहानी कोई नई विधा नहीं है। यह कोई नये लोगों का कोई रचनात्मक आंदोलन भी नहीं है। इसमें रोमांटिक भाव-बोध से तथा परम्परागत स्थिति से अलग रचनाकार है।

इस प्रकार समकालीन कहानी आंदोलन में इस काल की वास्तव और महत्त्वपूर्ण समस्याओं का चित्रण होता है। कथा रचना में पूर्ण रूप से परिवर्तन का प्रयास जिन कहानियों में हुआ वे सब समकालीन कहानी आंदोलन में आती है।

1.3.1 समकालीन कहानी आंदोलन की सीमा

कहानी साहित्य में समकालीनता का जन्म सन् ६० के बाद हुआ ऐसा माना जाता है लेकिन जो लोग सन् ६० के बाद की कहानियों के प्रति अपना नकारात्मक रुख रखते थे और नयी कहानी को ही प्रतिष्ठित करने की दिशा में चल रहे थे, उन्होंने ही सन् ७० में कहानी के बदलाव को स्वीकारा है।

राजेंद्र यादव ने "प्रेमचंद की विरासत" नामक ग्रंथ में बताया है कि, "सन् ७०-७२ के बाद से एक बार फिर दृश्य बदलता है और कहानी फिर से सामाजिक प्रतिबध्दता की बात करने लगी है। उसी अंदाज में दलित और शोषित आज नायक उभरने लगे हैं, जैसे सन् ६० के पहले आये थे।

आशाजनक बात यह है कि प्रतिक्रियावादी या प्रगतिशील प्रवृत्तियों के रुम में थोपे हुए नहीं बल्कि इस बार ये लोग सचमुच उन्हीं तकलीफों और निधली गहराइयों से उभरकर आये हुए लोग है, जो अपनी ही जुबान बोलते हैं, अपनी नियति को खुद बदलना चाहते हैं, और पूरे माहौल के सक्रिय हिस्सेदार हैं।"

इस दृष्टि से आठवे दशक की कहानियाँ अपनी पूर्ववर्ती कहानियों की अपेक्षा रचनात्मक उत्कृष्टता, सामाजिक जुडाव, दृष्टिगत बदलाव के कारण अपना अलग अस्तित्व रखती है। यह सब सन् ७० के बाद की कहानियाँ में ही दिखायी देता है। इसका विकास इस नवम दशक के उत्तरार्द्ध मैं भी हो रहा है। इसलिए अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर इस लघु शोध-प्रबंध में समकालीनता का प्रारंभ सन् ७०-७२ से माना गया है। जिसका निरन्तर विकास इस नवम दशक के उत्तरार्द्ध मैं भी हो रहा है।

1.4 समकालीन कहानी की विशेषताएँ

विभिन्न कहानीकारों और कथा-समीक्षकों ने समकालीन कहानी आंदोलन की अलग विशेषताओं को बताने का प्रयास किया है। फिर भी इन विभिन्न मतों से वस्तुस्थिती की पहचान नहीं होती। अतः समकालीन कहानी में जो चित्रण है, उसे समकालीन कहानीकार स्वयं कहानी के माध्यम से जीते हैं। हरेक की बात में एक नयी दृष्टि भी है, जो उनकी विशेषताओं को महत्त्व प्रदान करती है।

डॉ.पुष्पपाल सिंह ने "समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ" नामक अपने ग्रंथ में कहानी की नयी पीढ़ी ने जिस यथार्थ को अभिव्यक्त किया है, उस यथार्थ-चित्रण के बदलाव को ही नयी कहानी और समकालीन कहानी की प्रमुख विभाजक रेखा मानकर उन्हें आंदोलन के रूप में अलग दिखाने के लिए कुछ विशेषताओं को बताया है।

इसी आधार पर समकालीन कहानीकारों की इस नयी दृष्टि को लेकर ही समकालीन कहानी की निम्न विशेषताओं को बताया गया है।

- परिस्थिति का यथार्थ चित्रण
- आर्थिक पक्ष पर बल
- नयी नैतिकता का बोधा
- प्रचलित व्यवस्था का विरोध

- शहरी वातावरण का चित्रण
- बुध्दि-तत्व की प्रधानता

परिस्थिति का यथार्थ-चित्रण :

समकालीन कहानीकारों ने अपने चारों ओर प्रस्तुत यथार्थ को ही कहानी का कथ्य बनाया है। इस पीढ़ी के लेखक कहानी के माध्यम से यथार्थ को भोगते है। मुक्तिबोध, अमृतराय, गंगाप्रसाद विमल, ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, ममता कालिया, रमेशचंद्र शाह, सुधा आरोडा, पृथ्नाथसिंह, काशीनाथ सिंह, जगदीश चतुर्वेदी, माहेश्वर, गिरिराज किशोर, अशोक अग्रवाल, दामोदर सदन, परेश, से-रा-यात्री, महेन्द्र भल्ला, सिध्देश, रमेश उपाध्याय, शशिप्रभा शास्त्री, गोविद मिश्र, महीपसिंह, कुलभूषण, कृष्णा अग्निहोत्री आदि कहानी लेखकों की एक पूरी पीढ़ी ने अपने लेखन में जीवन के भयावह यथार्थ का साक्षात्कार कराया है। उन्होंने जीवन जिस स्म में पाया, उसी रूप में उसको अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।

अतः समकालीन कहानी का यथार्थ बहुआयामी है। एक प्रकार से आज के आदमी की पूरी जिंदगी ही कहानी में है। अमृत राय के मतानुसार, "लेखक के स्म में उनसे अधिकाधिक गहरे और संशिलष्ट रूप में जुड़ा रहना है, जिससे पता रहे कि समाज के ये विभिन्न अंग क्यों कर अपनी जिंदगी जीते है, क्या खाते है, कैसे रहते हैं, क्या सोचते

हैं, आपस में क्या बातें करते हैं, उनकी ज्वलंत समस्याएँ क्या हैं। यही ठोस ढंग से अपने परिवेश से जुड़ना है, अपने दिशा-काल को पहचानना है, और गहरे पैठकर देखिए तो यही श्रेष्ठ लेखन का असल रक्तमांस है

इस प्रकार समकालीन कहानी में जीवन-यथार्थ का कोई भी अंग अनछुआ नहीं रहा है। जो आज के मनुष्य ने जिस-जिस रुम मैं जिंदगी में देखा, भोगा उस सबका प्रामाणिक दस्तावेज समकालीन कहानी प्रस्तुत करती है। समय की समस्त सच्चाइयों का स्वीकार इस कहानी का प्रमुख स्वर है। आज कहानी जीवन का बडा अंतरंग परिचय देती है। इस अंतरंग परिचय में किसी प्रकार के आदर्शों और मूल्यों की रक्षा का मोह नहीं है। इसलिए समकालीन कहानीकार अपने "वर्तमान" मैं जो देख या भोग रहा है उसे पूरे सामर्थ्य से कहानी में उतार रहा है। इसलिए यह एक बहुत बड़ी विशेषता इस कहानी की है।

<u>आर्थिक पक्ष पर बल :</u>

समकालीन कहानी अर्थतंत्र की विषम समस्याओं और मानवीय अस्तित्व को खतरे में डालनेवाले मूलभूत प्रश्नों का चित्रण करती है। काशीनाथ सिंह, कमलेश्वर, प्रभुजोशी, माहेश्वर, सुदीप, से•रा यात्री, मधुकर सिंह, सतीश जमाली, जितेन्द्र भाटिया आदि ने आर्थिक समस्या का चित्रण अपनी कहानियाँ में किया है। सामान्य मनुष्य जिंदगी के विभिन्न मोर्चा पर अपने अस्तित्व के लिए जो भी लड़ाई लड़ रहा है,

उसका मुख्य कारण अर्थ-व्यवस्था है। इस अर्थ-व्यवस्था पर प्रहार करने के लिए समकालीन कहानी मनुष्य की इस लड़ाई में सहभागी बन गयी है।

विजय मोहन सिंह के नुसार, "जेब में बचे हुए आखिरी पैसे, नौकरी की बेशुमार अर्जियों का इन्तजार, अपने जैसे ही लोगों की भीड, उसे कहीं नहीं होने देती, न प्रेमिका के साथ, न किसी छोटे-से सुकून में। कभी-कभी चाय का एक गर्म प्याला ही उसे तसल्ली-सा देता लगता है। पर अचानक चाय लेकर ले आनेवाले छोटे-से लडके में ही वह अपनी छवि देख लेता है या अपने-आप में उसकी तसवीर १२ इस प्रकार समकालीन कहानी में जीवन के आर्थिक पक्ष का चित्रण समस्त विद्रूपताओं से किया गया है। करारे प्रहार के साथ आर्थिक पक्ष का चित्रण है, इसलिए यह महत्त्वपूर्ण विशेषता लगती है।

<u>नयी नैतिकता बोध :</u>

समकालीन कहानी में "नैतिकता" का परंपरागत अर्थ न होकर आधुनिक युग की जीवनस्थितियों में परिवर्तित अर्थ का चित्रण है। इन कहानियों में व्यक्ति का कोई भी कृत्य पापबोध न मानकर जैविक धर्म या जैविक प्रवृत्ति माना जाता है। उसे किसी भी प्रेम और वासना के कृत्य में संलिप्त दिखाया जाता है। प्रेम, विवाह और यौनसंबंधो में एक खुली दृष्टि अपनायी है। कृष्णा सोबती, महेन्द्र भल्ला, रमेश बक्षी,

जगदीश चतुर्वेदी, मन्नू भंडारी, उषा पियवंदा, शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा अग्निहोत्री, दीप्ति कैलवाल, मृदुला गर्ग, निस्ममा सेवती, मणिका मोहिनी, मृणाल पांडेय आदि कथाकारोंने बिना किसी निषेध-भाव के शरीर धधर्म की जीवनगत सच्चाइयों को चित्रित किया है। इस नयी नैतिक दृष्टि से हिंदी कहानी को एक सर्वधा नूतन आयाम मिल गया है, इसलिए यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता लगती है।

प्रचलित व्यवस्था का विरोध :

प्रत्येक दफ-तर, धार्मिक सुधार संस्था, राजनीतिक पार्टियां, संस्थाएँ, राजनेता, कानून और व्यवस्था की रक्षक पुलिस, स्कूल, कालिज और विश्व- विद्यालय, कल कारखाने आदि में व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था को समकालीन कहानी रचनात्मक स्तर पर उधाडती है। उससे निपटने के लिए एक आक्रोशशील, प्रहारक मुद्रा ग्रहण करती है। इस प्रचलित व्यवस्था के प्रति तीव्र रोष कहानी में है। पूरे जोश के साथ उसने इसे विरोध किया है। इसलिए रचनात्मक धरातल पर कहानीकार का यह रोष महत्वपूर्ण लगता है।

शहरी वातावरण का चित्रण:

जो नवयुक्क प्रारंभ से ही शहर में रह रहे हो, उनके अतिरिक्त जो भी शिक्षित वर्ग था, वह गाँव की जमीन से कटकर शहर से जुड़

रहा था या, नौकरी मिलने पर पूरी तरह वहीं से जुड़ गया था। इस कारण जो भी युवा कहानी-लेख्न मैं प्रवृत्त हुआ, उसने अपने को नगर या महानगर की विभिन्न समस्याओं से जूझते पाया । इसीलिए समकालीन कहानी "प्रमुख्तः" नगर या महानगर की ही कहानी बन गयी ।

इस प्रकार आज नगर और महानगर के जीवन का चित्रण ही कहानी का मुख्य स्वर बन गया है। लेखकीय और पाठकीय अभिरूषि के साथ नगर और महानगर के जीवन के विभन्न आयामों का चित्रण समकालीन कहानी मैं प्राप्त होता है।

<u>बुध्दि तत्व की प्रधानता :</u>

समकालीन कहानी जीवन-यथार्थ के कटु एवं भयावह सत्यों से जूझती है । व्यक्ति के अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों के समाधान के हेतु चेतना को स्पर्ण करती है। इसलिए आज कहानी एक चिंतन-विधा का सप धारण करती है। कहानी में आज संवेदना से अधिक प्रमुख चिंतन है। इसी कारण आज की कहानी बौध्दिक गंभीरता लिए हुए है। कहानी के सपबंध में आज गद्‌य की लगभग समस्त विधाओं की अंतर्भुक्ति हुई है। कहानी की इस बौध्दिकता ने उसे एक सशक्त साहित्यिक विधा का स्म बनाया है।

1.5 समकालीन कहानी में लेखिकाओं की भूमिका

स्वतंत्र भारत में शिक्षित स्त्रियों की संख्या बढ़ी है। इसके परिणामस्वरूप हिंदी में कवयित्रियों और कथा लेखिकाओं की संख्या में भी बहुत वृद्धि हुई है। 'नई कहानी' आंदोलन में गिनी-चुनी, कहानी लेखिकाएँ ही उभरकर सामने आई थीं। लेकिन उसके बाद इनकी संख्या में बराबर वृद्धि होती गई। यदि हम इस समय कहानी रचने में रत लेखिकाओं की गिनती करें तो वह तीन दर्जन से अधिक होंगी। सबका नामोल्लेख या चर्चा यहाँ संभव नहीं है, फिर भी कुछ प्रमुख नामों का उल्लेख किया जा सकता है। इस समय की कहानी लेखिकाओं में ममता कालिया, मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, सूर्यबाला,मेहरुन्निसा परवेज, सुनीता जैन, कुसुम अंसल, सिम्मी हर्षिता, कृष्णा अग्निहोत्री, कमल कुमार, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, ऊषा किरण खान, गीतांजली श्री, अलका सरावगी, सुधा अरोड़ा, आदि कुछ ऐसे नाम हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन लेखिकाओं की कहानियों में से कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आती है। प्रायः सभी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में भारतीय परिवेश में अपनी मुक्ति के लिए नारी की छटपटाहट का चित्रण किया है। इनमें से जो लेखिकाएँ सचेत भाव से स्त्रीवादी हैं, उनकी कहानियों के नारी पात्र परंपराओं और परंपरागत

नैतिक मूल्यों के प्रति विद्रोह करते हैं और कामसंबंधों के मुक्त, साहसिक पक्ष के पक्षधर हैं। नारी-विमर्श के प्रसंग में प्रायः इन्हीं लेखिकाओं और इनकी कहानियों की चर्चा होती रहती है। चर्चित होने का एक रास्ता यह भी है। लेकिन सभी लेखकाओं में यह प्रवृत्ति नहीं है। सामान्यतः लेखिकाओं का अनुभव-जगत् सीमित है, क्योंकि आखिर हैं तो वे भी मध्यवर्ग की ही सद्स्य; लेकिन कुछ लेखिकाएँ ऐसी भी हैं, जिन्होंने सीमित मध्यमवर्गीय दायरे का अतिक्रमण भी किया है।

निष्कर्ष

कहानी २१ वीं सदी की भारी उथल-पुथल और बदलते समय के रूपों को अपने अतीत में संजोए है। २१ वीं सदी की दहलीज़ पर खड़ी कहानी परस्परा और आधुनिक युग के परस्पर अन्तविरोधों में जी रहे भारतीय समाज के यथार्थ को पहचानने की कड़ी चुनौती को निभा रही है। कहानी आज अपने समय और समाज से रूबरू है। इक्कीसवीं सदी का यह चुनौती भरा दशक परिवर्तन का दौर है। एक तरफ ग्लोबलाइजेशन के बीच सिकुड़ती दुनिया है, दूसरी ओर तेजी से बदलती परिस्थितियाँ और फैलता बदरंग यथार्थ है। समकालीन हिंदी कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सभी तरह की संकीर्णताओं और मान्यताओं को तोडकर सीधे-सीधे आम आदमी से रिश्ता बनाने की कोशिश करती है। समकालीन कहानी अपनी व्यापक संवेदनशीलता के कारण जिस वृहत्तर मानव समाज से जुड़ती है , वह सामाजिक परिस्थितियों और अन्तर्विरोधों को पहचानने की कोशिया रही है।

संदर्भ

१ सिंह, डॉ. पुष्पपाल, समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, दिल्ली नेशनल प्रकाशन,1986 , पृष्ठ ५५

२ बाला,डॉ.किरण,समकालीन हिंदी कहानी और समाजवादी चेतना,कानपुर अनुभव प्रकाशन, 1988, पृष्ठ ७

३ वही,पृष्ठ ९

४सिंह , डॉ. पुष्पपाल, समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, दिल्ली नेशनल प्रकाशन , 1986 , पृष्ठ२१

५ वही, पृष्ठ २२

६ वही, पृष्ठ २२

७ वही, पृष्ठ २२

८ पाण्डेय, श्यामसुन्दर, समकालीन हिंदी कहानी सरोकार और विमर्श, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, 2014 पृष्ठ ३६

९ बाला,डॉ.किरण,समकालीन हिंदी कहानी और समाजवादी चेतना,कानपुर अनुभव प्रकाशन, 1988, पृष्ठ १५

१०वही, पृष्ठ २०

११ सिंह , डॉ. पुष्पपाल, समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, दिल्ली नेशनल प्रकाशन,1986 , पृष्ठ ८६

१२ सिंह, विजय मोहन, आज की कहानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1983, पृष्ठ १०५

द्वितीय अध्याय

सामाजिक समस्या : अवधारणा एवं स्वरूप

सामाजिक समस्या : अवधारणा एवं स्वरूप

प्रस्तावना

सामाजिक समस्याएँ आम रूप से मानव समाज में उत्पन्न होती हैं और लोगों के बीच विभिन्न प्रकार की असंतोष, असमानता, और विवाद पैदा करती हैं। ये समस्याएं समाज के सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, और मनोवैज्ञानिक पहलुओं के द्वारा बोझित होती हैं। सामाजिक समस्याओं में गरीबी, जातिवाद, लिंग भेदभाव, धर्मान्धता, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार, और वातावरण संकट जैसे मुद्दे शामिल हो सकते हैं। इन समस्याओं का समाधान समाज के सभी वर्गों और सरकारी तंत्रों की सहयोग से संभव है।

सामाजिक समस्या : अर्थ, व्याख्या एवं अवधारणा

'समाज' शब्द 'सम' उपसर्ग और 'अज्' धातू में 'धम' प्रत्यय लगाने से इस शब्द की उत्पती हुई है। समाज को समूह, सभा, दल आदि कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'सोसाईटी' कहते हैं। साधारण बोल-चाल में उसे मनुष्य का समूह कहते है। समाज अनेक रीतियों, कार्यप्रणालियों तथा पारस्पारिक से संबधित मानव व्यवहार के स्वतंत्रताओं तथा नियंत्रणों की व्यवस्था है और इस व्यवस्था में समय-समय में बदलाव होता रहता है। समाज मूर्त वस्तू नहीं है वह अमृत है।

“समाज एक स्थान पर रहनेवाला अथवा एकही प्रकार के कार्य करनेवाले लोगों का दल, किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित समूह है।”१

'हिन्दी' शब्द सागर में समाज का अर्थ इस प्रकार दिया है- "एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते है। जैसे शिक्षित समाज, ब्राहयमण समाज अथवा वह संस्था जो की बहूत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की हो।"२

समाज को और भी अच्छी, तरह समझने के लिए यह कुछ सामाजिक परिभाषाओं पार प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। आलोचोकों ने समाज को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है। "समाज का सामान्य अर्थ व्यक्तियों का समूह है। मनुष्य मनुष्यों से पृथक रहकर अपने आसपास के व्यक्तियों से संबंध स्थापित करना आवश्यक है। व्यतियों के इन सामाजिक संबंधों को समाज कहता है।"३

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने समाज की परिभाषा इस तरह प्रस्तूत की है- "एक ही स्थान पर समाज-धर्मी व्यवसाधियों द्वारा निर्मित समुदाय को ही समाज माना है।"

डॉ. विष्णू प्रभाकर ने समाज की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि- "भीड़ और समाज एक स्तर पर समनार्थी है कि वे एक से अधिक संख्या को सूचित करते है। पर दूसरे स्तर पर परस्पर विरोधी भी है कि अनियंत्रित है मात्र उर्जा हे। समाज नियंत्रित है। बाहर से नियंत्रित हे परस्पर के संबंधों को लेकर हे। भीतर से अनुशासित हे ऊर्जा के विनाशकारी रूप के रूपांतरित होने के कारण।" जब तक व्यक्ति-व्यक्ति में आपस में संबंध और संपर्क विकसित नहीं होते है, तब तक समाज का निर्माण असंभाव है।

'सामाजिक समस्या' का अर्थ समझने के लिए हमें 'सामाजिक' तथा 'समस्या' शब्द का अर्थ समझ लेना उचित होगा। जब भी हम 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे हमारा अभिप्राय मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक संरचना (ढाँचे), संगठन आदि से होता है। समस्या का अभिप्राय ऐसे अवांछनीय एवं अनुचित व्यवहारों अथवा प्रचलनों से है, जो सामाजिक व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न कर देते हैं। अतः सामाजिक संगठन, सामाजिक संरचना या मानवीय सम्बन्धों में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें हम सामाजिक समस्याएँ कहते हैं। सामाजिक समस्या सदैव विघटनमूलक होती हैइससे सामाजिक संगठन में उथल-पुथल हो सकती है तथा नियमित एवं सामान्य जीवन बुरी तरह से प्रभावित हो सकता है। सामाजिक समस्या केवल किसी

विशेष स्थिति की ही सूचक नहीं होती अपितु उस स्थिति की गम्भीरता के बारे में सामाजिक चेतना या सामाजिक चिन्ता की अभिवृत्ति को भी व्यक्त करती है।

सामाजिक समस्याओं को समाजशास्त्रियों ने भिन्न - भिन्न दृष्टिकोणों से समझाने का प्रयास किया है। इन सभी विद्धानो ने सामाजिक समस्या के विभिन्न स्वरूपों को निम्न पिरभाषाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं।

- अरनोल्ड एम. रोज लिखते हैं कि सामाजिक समस्या एक ऐसी अवस्था है जो किसी समूह के द्वारा स्वयं के सदस्यों के लिए असंतोश के उदगम के रूप मे पाई जाती है तथा इसमें उन विकल्पों को मान्यता प्रदान की जाती है जिसके द्वारा कोई समूह अथवा इसका सदस्य किसी न किसी प्रकार का पिरवर्तन लाने के लिए प्रेरित होता है । इसे (सामाजिक पिरिस्थित / अवस्था) सामाजिक समस्या इसिलए स्वीकार किया जाता है क्योंकि यह सामाजिक पिरवेश में ही पाई जाती है और इसके उत्तरदायी कारक सामाजिक पिरवेश में ही विद्यमान रहते हैं।

- पॉल एच. लेंडिस के अनुसार सामाजिक समस्याएँ व्यिक्तयों के कल्याण से सम्बिन्धत अपूर्ण आकांक्षाए होती है। सामाजिक समस्याओं के संदर्भ मे उनका अिभप्राय यह है कि जब व्यिक्त की इच्छाएं आवश्यकताएं अथवा आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती तब वे सामिजक समस्याओं का स्वरूप ले लेती

- रिचर्ड सी. फुलर एवं रिचर्ड मेयर्स का कथन कि व्यवहार के जिन मानदण्डों अथवा पिरिस्थितयों को किसी समय विशेष में समाज के अिधकां सदस्य अवांछनीय स्वीकार करते हैं, सामाजिक समस्याएं कहलाते हैं । इन विद्वानों की मान्यता है कि इन समस्याओं के निराकरण तथा कार्यक्षेत्र को सीमित करने के लिए सुधारात्क नीतियों, कार्यक्रमों एवं सेवाओं की अपिरहार्यता होती है।

- रोब अर्ल एवं जी. जे. सेल्जिनक सामाजिक समस्या के संदर्भ मे लिखते हैं कि यह (सामाजिक समस्या) मानवीय सम्बंधों को खतरनाक तरीके से प्रभावित करती है और समाज के अिस्तत्व के लिए खतरा उत्पन्न कर देती है तथा अनेक लोगों की आशाओं पर तुषारापात करती है।

- क्लेरेंस मार्श केस लिखते हैं कि सामाजिक समस्या का अभिप्राय किसी ऐसी सामाजिकपिरिस्थित से है जो किसी भी समाज में योग्य अवलोकनकर्ताओं का ध्यान आकिर्षत करती है तथा सामूहिक अथवा सामाजिक क्रिया विधि के द्वारा समाधान निकालने का प्रयास करती है।

- फ्रांसिस ई. मेरिल तथा एच. डब्ल्यू एल्डिरज सामाजिक समस्याओं की उत्पित्त के संदर्भ मे लिखते हैं कि सामाजिक समस्याएं उस अवस्था में जन्म लेती है जब गितहीनता के कारण काफी संख्या मे लोग स्वयं की अपेक्षित भूमिकाओं के निर्वहन में असमर्थ होते हैं।

- शेपर्ड तथा वाँस के अनुसार सामाजिक समस्या समाज की कोई भी एक ऐसी सामाजिक दशा होती है जिसे समाज के बहुत बड़े भाग या शिक्तशाली भाग द्वारा अवांछनीय तथा ध्यान देने योग्य समझा जाता है।

- मेरी ई. वाल्श एव पॉल एच. फर्फे का मत है कि सामाजिक समस्याएं सामाजिक आदर्शों का विचलन है जिनका निराकरण सामूहिक प्रयासों से ही सम्भव हो सकता है।

- पॉल बी हॉर्टन एवं जीराल्ड आर. लेस्ली लिखते हैं कि सामाजिक समस्या एक ऐसी स्तिथि है जो अनेक व्यिक्तयों को प्रितकूल रूप से प्रभावित करती है तथा जिसका हल समूह द्वारा सामूहिक क्रिया द्वारा निकालाजाता है।

- रोबर्ट के. मर्टन एवं निस्बेत का मत है कि सामाजिक समस्या व्यवहार का एक ऐसा रूप है जिसे समाज का एक बड़ा भाग व्यापक रूप से स्वीकृत तथा अनुमोदित मानदण्डो का उल्लंघन मानता है।

सामाजिक समस्याओं के प्रकार

सामाजिक समस्याएँ अनेक प्रकार की होती हैं तथा इनका वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं- सम्बन्धित पक्ष एवं क्षेत्र के आधार पर सामाजिक समस्याएँ ;

वैयक्तिक- (यथा मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ, आत्महत्या आदि)

पारिवारिक - (यथा पारिवारिक कलह, घरेलू हिंसा एवं तलाक आदि)

सामुदायिक- (यथा जातिवाद, वर्ग संघर्ष, साम्प्रदायिकता आदि)

राष्ट्रीय- (यथा अपराध, बालापराध, भाषावाद, जनाधिक्य आदि)

अन्तर्राष्ट्रीय - (यथा युद्ध, शीतयुद्ध आतंकवाद आदि)

क्षेत्रीय आधार पर इन्हें क्षेत्रीय, प्रादेशिक, देशव्यापी तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में विभाजित किया जा सकता है।

- समय के आधार पर सामाजिक समस्या थात्कालिक, अल्पकालिक, दीर्घकालिक
- प्रकृति के आधार पर सामाजिक समस्या बहिर्मुखी (जिन्हें स्पष्टतः देखा जा सकता है; जैसे निर्धनता,

बेरोजगारी, अपराध आदि) अन्तर्मुखी (जिन्हें स्पष्टतः देखा नहीं जा सकता है; जैसे जातीय पूर्वाग्रह, वेश्यावृति, मद्यपान आदि)

सामाजिक समस्याओं के उपर्युक्त वर्गीकरण स्पष्ट करते हैं कि इन्हें अनेक आधारों पर विभाजित किया गया है। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं एवं सामाजिक विघटन की दृष्टि से सम्बन्धित पक्ष एवं क्षेत्र के आधार पर किए गए वर्गीकरण को ही सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है।

सामाजिक समस्या की विशेषताएँ

<u>सामाजिक समस्या की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं-</u>

- सामाजिक समस्या वह दशा या स्थिति है जिसे समाज हानिकारक मानता है तथा उसके समाधान की आवश्यकता महसूस करता है।
- सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सामाजिक संरचना से होता है। इसीलिए वही समस्याएँ सामाजिक समस्याएँ कही जाती हैं जो या तो सामाजिक संरचना पर कुप्रभाव डालती हैं अथवा जिनका कारण समाज की विद्यमान सामाजिक संरचना में होता है।
- सामाजिक समस्या में सामूहिकता का तत्त्व निहित होता है। यदि केवल कुछ व्यक्ति किसी स्थिति को अवांछनीय मानते हैं तो वह सामाजिक समस्या नहीं कही जाएगी। अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अमुक समस्या को किसी-न-किसी प्रकार की बाधा मानने पर ही वह समस्या सामाजिक समस्या कही जाएगी।
- सामाजिक समस्या वह अवांछनीय स्थिति है जिसे सुधारने का प्रयास किया जाता है। यदि कोई समस्या अवांछनीय तो है परन्तु समाज के सदस्य उसमें किसी प्रकार के सुधार की न तो
- आशा करते हैं और न ही प्रयास करते हैं तो ऐसी समस्या सामाजिक समस्या नहीं कही जाएगी।

- सामाजिक समस्या समाज कल्याण की धारणा से सम्बन्धित होती है। समाज कल्याण को अवरुद्ध करने वाली समस्याएँ ही अधिकतर सामाजिक समस्याएँ मानी जाती हैं।
- फुल्लर तथा मेयर के मतानुसार जागरूकता, नीति-निर्धारण तथा सुधार सामाजिक समस्या से सम्बन्धित वे चरण हैं जिनके द्वारा किसी समुदाय में इनका निर्धारण सम्भव होता है।
-

सामाजिक समस्या की उत्पत्ति

सामाजिक समस्या की उत्पत्ति अनेक कारणों से होती है। जब सामाजिक संगठन में सामंजस्य समाप्त हो जाता है और समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों, आदर्शों व नियमों में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो सामाजिक समस्या जन्म लेती है। जॉन केन के अनुसार जब कभी समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं आदर्शों के प्रतिकूल परिस्थितियाँ विकसित हो जाती हैं तो अनेक प्रकार की समस्याएँ जन्म लेने लगती हैं। सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति यद्यपि अनेक कारणों एवं परिस्थितियों के कारण होती है फिर भी प्रत्येक सामाजिक समस्या कुछ निश्चित चरणों में से गुजर कर ही विकसित होती है। फुल्लर एवं मेयर्स ने सामाजिक समस्या के स्वाभाविक एवं प्राकृतिक विकास के चरणों की विस्तृत विवेचना की है। प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं-

1. <u>चेतना की स्थिति</u>- सामाजिक समस्या के विकास का प्रथम चरण समाज के व्यक्तियों में सामाजिक व्यवस्था एवं सामान्य जीवन को अवरुद्ध करने वाली कठिनाइयों के बारे में चेतना है। समाज के अधिकांश सदस्य इन्हें महसूस करने लगते हैं और उनके बारे में सोच विचार शुरू कर देते हैं।

2. <u>कठिनाइयों का स्पष्टीकरण</u> - द्वितीय चरण में कठिनाइयाँ अधिक स्पष्ट हो जाती हैं और सामान्य जनता इनसे असुविधा महसूस करने लगती है और इनकी ओर स्पष्ट इशारा किया जाने लगता है।

3. <u>सुधार कार्यक्रमों या लक्ष्यों का निर्धारण</u> - समस्या स्पष्ट हो जाने के पश्चात् इसके समाधान के लिए कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों के निर्धारण का कार्य तृतीय चरण में होता है।

4. <u>संगठन का विकास</u> - लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् इन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक संगठन का विकास किया जाता है तथा आवश्यक साधनों को एकत्र किया जाता है ताकि सुधार कार्यक्रमों को लागू किया जा सके।

5. <u>सुधार का प्रबन्ध</u> - सामाजिक समस्याओं के स्वाभाविक विकास का अन्तिम चरण इसके समाधान के लिए सुधार कार्यक्रमों को लागू करना है तथा अगर आवश्यक हो तो इसके लिए अनिवार्य संस्था का विकास करना है।

रोबर्ट ए० निस्बेत ने सामाजिक समस्या की उत्पत्ति में चार सहायक कारक बताए हैं-

संस्थाओं में संघर्ष कई बार अनेक संस्थाओं के उद्देश्यों, लक्ष्यों व साधनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन एवं नवीन संस्थाओं में यह संघर्ष अधिक पाया जाता है क्योंकि प्राचीन संस्थाएँ व्यवस्था को यथारूप बनाए रखने पर बल देती हैं जबकि नवीन संस्थाएँ सामाजिक गतिशीलता पर अधिक बल देती हैं।

<u>सामाजिक गतिशीलता</u> - यह प्रथम कारक से जुड़ा हुआ कारक है। गतिशीलता की सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि गतिशीलता के कारण व्यक्ति को नवीन प्रस्थितियों, मूल्यों आदि से काफी संघर्ष करना पड़ता है और कई बार लोग तंग आकर अवैधानिक, अनैतिक व अस्वीकृत तरीकों द्वारा अपनी प्रस्थिति ऊँचा करने का प्रयास करते हैं।

<u>व्यक्तिवाद</u> - आज के युग में निरन्तर बढ़ता हुआ व्यक्तिवाद भी सामाजिक समस्याओं का कारण है। परम्परागत समाजों में जीवन

सामूहिक होता था परन्तु आज व्यक्ति अपने में ही खोता जा रहा है और सामूहिकता समाप्त होती जा रही है। इससे प्राथमिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता है और व्यक्ति के पथभ्रष्ट होने की सम्भावना बढ़ जाती है। सामाजिक एकता में कमी हो जाती है, व्यक्तिवाद के कारण व्यक्ति मनचाहा व्यवहार करने लगता है तथा वह समाज के रीति-रिवाजों की चिन्ता नहीं करता।

<u>व्याधिकीय स्थिति</u> - व्याधिकीय स्थिति भी सामाजिक समस्याओं को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस स्थिति में व्यक्ति समाज के मूल्यों की चिन्ता किए बिना, जो उन्हें अच्छा लगता है वह करने लगते हैं और इससे समाज में अव्यवस्था और सामाजिक समस्याएँ बढ़ जाती हैं। व्याधिकीय स्थिति एक प्रकार से आदर्शविहीनता की स्थिति है जिसमें समाज में पाए जाने वाले आदर्श नियम व्यवहार को नियमित करने में असफल रहते हैं। लोग मनमाना व्यवहार करने लगते हैं तथा इससे अनेक नवीन सामाजिक समस्याएँ विकसित हो जाती हैं।

सामाजिक समस्याओं के कारण

सामाजिक समस्याओं के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है अपितु प्रत्येक समस्या के पीछे एक जटिल इतिहास रहता है। उदाहरणार्थ, बेरोजगारी, आत्महत्या, अपराध आदि समस्याओं के पीछे एक कारण न होकर अनेक कारण होते हैं। सामाजिक समस्याओं के कारणों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

- राब एवं सेल्जनिक के अनुसार, "एक सामाजिक समस्या तब पैदा होती है जबकि एक संगठित समाज की योग्यता लोगों के सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में असफल सी प्रतीत होती हैं और तब इसकी संस्थाएँ विचलित होने लगती हैं, कानूनों का उल्लंघन होने लगता है, मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित नहीं होते तथा आकांक्षाओं का ढाँचा लड़खड़ाने लगता है।"
- सामाजिक समस्याएँ मनुष्यों के व्यवहार, जोकि अनेक प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारकों पर निर्भर करता है, में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं। यदि व्यवहार सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध होने लगता है तो सामाजिक समस्याएँ पैदा होने लगती हैं।
- सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति के कारण प्रायः सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि कई बार व्यक्ति नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन करने में असमर्थ होते हैं।

- सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण आर्थिक होता है। बेरोजगारी न केवल व्यक्तिगत समस्या है वरन् यह आर्थिक समस्या भी है।
- पारसन्स के अनुसार मनुष्य का भौतिक साधनों के साथ अधूरा समायोजन ही मनुष्य की समस्याओं के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।
- वोल्फ ने जनसंख्या की वृद्धि को ही सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण बताया है।
- इलियट एवं मैरिल ने सामाजिक विघटन को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण माना है।
- ऑगबर्न ने भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में असमान गति के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक विलम्बना को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण बताया।

सामाजिक चेतना का अर्थ है जनता या समाज में जागृती लाना। यह जागृति सामाजिक आध्ययन से ही संभव है और सामाजिक चेतना का अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्रीय की पध्दति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव जीवन के सामाजिक पक्ष का विवेचन करनेवाले को 'समाजशास्त्र' कहते है। इसी 'समाजशास्त्र' के द्‌वारा हमें समाज या सामाजिक जीवन और उसके समस्याओं का बोध होता है।

हमारे अंदर चेतना हमेश जागृत रहती है, जिसके कारण हम वस्तुओं, परिस्थितियों, व्यक्तियों तथा घटनाओं आदि की पहचान कर पाते है। चेतना स्थिर नहीं होती है। चेतना अपने मूल तत्वों ज्ञान, भाव, चेष्ठा के अनुसार अनुभूति के स्तर पर परिवर्तशील होती रहती है। चेतना सामाजिक परिवेश में विकसित होती है। दूसरे शब्दो में कहे तो सामाजिक वातावरण के संर्पक से चेतना का विकस होता रहता है। सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव के कारण मनुष्य नैतिकता तथा उचित व्यावहारिकता हासिल करता है। व्यक्ति कोई भी कार्य चेतना से उत्पन्न प्रेरणा से ही कर सकता है। इसीलिए व्यक्ति और चेतना के सामाजिक चरित्र में मौलिक संबंध होता है। चेतना व्यक्ति को जीवित रखती है। वह मनुष्य की व्यक्तिगत संपत्ति ना होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है। वह मनुष्य की ऐसी क्रिया-शक्ति है, जिसके कारण मनुष्य समाज के लिए कार्य करने के ओर प्रवृत्त होता है। उसके हर

कार्य मे चेतना शामिल रहती है। चेतना की विशेषता यह है की उसके अनुसार व्यक्ति के भावों और विचारों में जागृतता आ जाती है। वह मानव के अंतर्गत की शक्ति है, जिससे व्यक्ति के मस्तिष्क में गति आती है और वही गति व्यक्ति की चेतना है। जब कोई व्यक्ति उद्देश लेकर क्रिया करने लगता है तों हम उसे चेतना कह सकते है।

डॉ. राहुल जी ने कहा है- "वर्तमान क्षण की संज्ञात क्रियाओं का नाम चेतना है। यह एक गतिशील वस्तु है, व्यक्ति सापेक्ष स्वतंत्र एवं सूक्ष्म। इसे किसी प्रकार से चश्मे से भी नहीं देखा जा सकता। अनुभवी विचारों को एवं आध्यामिक मनीषियों ने क्रिया संवेदना के कारण ही आधारभूत शक्ति को चेतना के नाम से पुकारा है। इसी क्रिया शक्ति को संस्कृत के आचार्यों एवं मनीषियों ने बुध्दि, ज्ञान, जीवन, शक्ती, भावना या विचार के अर्थ में स्वीकार किया है।"

डॉ. कुवरपाल का मानना है- "सामाजिक चेतना सरित प्रवाह की तरह विकसित होती चलती है, यह चेतना विच्छिन्न नहीं होती, बल्कि भिन्न-भिन्न समस्याओं, राजनीतिक गतिविधिओं, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषमताओं से संबधित नागरिक जीवन की समानतामूलक भावना ही सामाजिक चेतना है।"

इसी प्रकार डॉ. रत्नाकार पाण्डेय के अनुसार- "जब कोई नूतन विचारधारा समाज में प्रविष्ट होती है और निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती है तो सामाजिक विचारधारा जागृत होती है। इसी जागृति को सामाजिक चेतना कहा जाता है। सामाजिक चेतना के अर्थ, राजनीतिक, धर्म आदि विविध तत्व है।"

व्यक्तिमूलक एवं समाजमूलक दोनों रुपों में सामाजिक चेतना रहती है। व्यक्ति चेतना समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। सामाजिक चेतना व्याक्ति के दो रूपों को प्रकट करती है। एक रूप मनुष्य के क्षुद्ध व्यक्तित्व का और दूसरे रूप से मनुष्य विशाल व्यक्तित्व ग्रहण करता है। व्यक्ति जितने भागों में सामाजिक चेतना को धारण करता है, उतना ही उसका जीवन सफल बन जाता है। स्वचेतना केंद्रीत होकर जब व्यक्ति समाज के स्वार्थ के विपरित जाता है, तब समाज मे विद्रोही स्थितियाँ पैदा होती है।

सामाजिक चेतना से अभिप्राय यह है कि- "सामाजिकता की आत्मा अर्थात उसके वे मूल्यभूत गुण जिनके कारण सामाजिक चेतना इस सज्ञा से अभिहित होती है। आत्मा के उद्द्त आशय, सभ्यता या संस्कृति के सम्पूर्ण तत्वो तथा समाज कि उद्वेग जनक स्थितियों की अवधारणा को सामाजिक चेतना कहते है। जातियता, सार्वजनिकता, युग की संघपूर्ण

स्थिति की व्यंजकता सबको एक साथ मिलाकर सामाजिक चेतना का नाम दिया जा सकता है। जीवन और जगत की व्रिराटता का वैविध्यपूर्ण चित्रांकन, विशिष्ट जीवन दर्शन शाश्वत मानव प्रश्नों और मूल्यों की स्थापना आदि से सामाजिक चेतना की झलक मिलती है। पंरपरागत आचार-विचारों का परिष्कार उन्हें युगीन रूप में प्रस्तुत करने में सामाजिक चेतना विहित है।"

सामाजिक समस्याओं का समाधान

सामाजिक समस्याओं के हल में निम्न उपाय प्रभावकारी हो सकते हैं-

१) 'तनावपूर्ण समस्यात्मक' स्थितियों की पुनर्व्याख्या-तनावपूर्ण एवं समस्याजनक परिस्थितियों पर पूर्व नियन्त्रण द्‌वारा सामाजिक समस्या को हल किया जा सकता है। हमारे समाज की अनेक अन्तः समूह सम्बन्धों की समस्याएँ, भेदभाव की भावना, भ्रान्तिपूर्ण विश्वासों तथा अपमानजनक प्रवृत्तियों का परिणाम होती हैं। जिन समूहों के प्रति भेदभाव की भावना समाज में पाई जाती है, यदि उनकी नए सिरे से परिभाषा की जाए तो प्रायः अनेक अन्तः समूहों के सम्बन्धों की समस्याएँ हल हो सकती हैं। कुछ स्थितियों को यदि सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार न किया जाए तो ये स्थितियाँ स्वयं समाप्त हो सकती हैं। उदाहरणार्थ अमेरिका में व्यापारिक वेश्यावृत्ति समाप्त हो गई

है क्योंकि वेश्याओं की माँग बहुत कम हो गई है तथा स्त्रियों ने अपनी आय बढ़ाने के लिए अच्छे संस्थानों में नौकरी करनी शुरू कर दी है।

२)व्यक्तियों के व्यवहारों में परिवर्तन - क्योंकि अनेक समस्याएँ मूल्यों से सम्बन्धित हैं अतः इन मूल्यों एवं व्यक्तियों के व्यवहार को परिवर्तित करके भी सामाजिक समस्या के प्रभाव को कम किया जा सकता है। मनुष्य के समस्याजनक व्यवहार को तार्किक दृष्टि से समझाकर उसे प्रचार के साधनों द्वारा बदला जा सकता है। कभी-कभी व्यक्तियों के समस्याजनक व्यवहार को बदलना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में समुचित शिक्षा व मानसिक परिवर्तन के द्वारा कम से कम बच्चों के व्यवहार को परिवर्तित उन्हें समस्या से मुक्त किया जा सकता है।

३) समस्याजनक व्यवहार पर वैधानिक नियन्त्रण - विभिन्न कानूनों को सख्ती से लागू करके या वर्तमान कानूनों में समुचित संशोधन कर अनेक समस्याजनक व्यवहारों को नियन्त्रित किया जा सकता है। समस्याजनक व्यवहार के लिए सरकार दण्ड तो देती ही है, लेकिन साथ ही दण्डनीय व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की पुर्स्थापना का प्रयत्न भी करती है। यह दोहरी नीति समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा उन्हें

प्रोत्साहन देती है। अतः ऐसे व्यवहारों पर रोक लगाने के लिए प्रभावकारी कानून अनिवार्य है।

४) विद्वानों की सेवाओं का उपयोग - सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में विभिन्न विद्वानों (जैसे मनोचिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्ता, समूह संगठनकर्ता, समूह कार्यकर्ता, समूह प्रशासक, शिक्षावेत्ताओं आदि) की सेवाओं को उपयोग में लाया जा सकता है। ये विद्वान् विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण कर सामाजिक समस्या के उपचार के साधन बता सकते हैं। हमारे समाज में सामाजिक वैज्ञानिक की पूर्ण क्षमताओं का प्रयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए नहीं किया जा रहा है।

५) सामाजिक संरचना में परिवर्तन- प्रायः सामाजिक संरचना व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करती है। कुछ सामाजिक समस्याओं का हल सामाजिक संरचना में परिवर्तन द्वारा सम्भव हो सकता है। समूह की संरचना में ऐसी स्थितियाँ सर्जित की जा सकती हैं जिनसे कि समूह के सदस्य सदैव सद्भावनापूर्ण वातावरण में आपस में सहयोगात्मक रूप से रहें तथा समाज की मान्यताओं के प्रतिकूल व्यवहार ही न करें।

६) समाजवादी समाज की स्थापना - कार्ल मार्क्स ने समस्याओं से युक्त समाज के निर्माण के लिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर साम्यवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया है, लेकिन केवल मात्र अर्थव्यवस्था को बदल देने से समाज की समस्त समस्याओं का हल नहीं हो सकता। इसके लिए वास्तविक समाजवादी समाज की स्थापना सहायक हो सकती है जिसमें आर्थिक एवं अन्य असमानताएँ कम से कम हों।

७) धार्मिक शिक्षा-कुछ विद्वानों का विचार है कि धार्मिक शिक्षा के प्रसार द्वारा भी अनेक समस्याओं को हल किया जा सकता है। सोरोकिन तथा टॉयनबी आदि विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि धार्मिक मूल्यों को स्वीकार करके ही अनेक समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है।

८) सामाजिक सेवाएँ- विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाओं के द्वारा भी समाज की समस्याओं को हल करने में सहायता मिलती है क्योंकि ये तनावपूर्ण स्थितियों के प्रभाव को कम करने के महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती हैं। सामाजिक समस्याओं से पीड़ित व्यक्ति सामाजिक सेवाओं का संरक्षण प्राप्त कर सकते हैं और समस्याजनक स्थिति के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं।

वास्तव में, सामाजिक समस्याओं का समाधान इतना सरल नहीं है जितना कि यह लगता है। अगर इतना सरल होता तो अनेक समाज समस्याओं से मुक्त होते। अनेक समस्याओं की जड़ें हमारी भ्रांतियाँ एवं अन्धविश्वास हैं। अतः उचित शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार से ऐसे अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया जा सकता है तथा अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस सन्दर्भ में यही बात अत्यन्त उल्लेखनीय है कि समस्याओं का समाधान केवल मात्र सरकारी प्रयासों द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि इसके लिए जन-सहयोग का होना अत्यन्त आवश्यक है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णित इकाई में सामाजिक समस्या की अवधारणा से आप परिचित हुए होंगे। इस इकाई में सामाजिक समस्या की उत्पत्ति के

प्रमुख कारक कारण एवं सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों का भी वर्णन किया गया है। उक्त अध्याय को पढ़ने के बाद आप समझ पायेगे कि किस प्रकार एक सामाजिक समस्या अनेक सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित होती है तथा सामाजिक समस्या किस प्रकार समाज की व्यवस्था, स्थायित्व एवं संतुलन के लिए खतरा पैदा कर सकती है। जहां भी समाज है वहां पर सामाजिक समस्या तो विद्यमान रहेगी ही । समस्याविहीन समाज की कल्पना करना असम्भव सा प्रतीत होता है। भारतीय समाज मे अनगिनत सामाजिक समस्याएं है। सामाजिक समस्या की प्रकृति, मूलभूत कारक एवं कारणों को समझकर इसके समाधान के लिए प्रयास किए जा सकते है।

संदर्भ

१शर्मा रामनाथ, कुमार राजेंद्र, अपराधशास्त्र एवं दण्डशास्त्र तथा सामाजिक विघटन, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2004, पृष्ठ ३

२ वही, पृष्ठ ३

३ वही पृष्ठ ४

४ गुप्ता, एम.एल, शर्मा, डी डी, समकालीन भारत में सामाजिक समस्या, साहित्य भवन आगरा, 1981,पृष्ठ ११

५ वही, १८

६ वही, २२

७ वही, २२

८ डॉ.बी. एच किर्दक, भारत में सामाजिक समस्या, इशिका पब्लिशिंग हाउस, 1 जनवरी 2017, पृष्ठ ४५

९ आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत बुक्स, 1 जनवरी 2016, पृष्ठ २२

१० वही, पृष्ठ २२

११ वही, पृष्ठ २५

तृतीय अध्याय

समकालीन कहनियाँ : सामाजिक समस्याएँ

समकालीन कहानियाँ : सामाजिक समस्याएँ

प्रस्तावना

समकालीन महिला कथाकारों ने हिम्मत और ईमानदारी के साथ अपनी कहानियों में सामाजिक समस्याओं, का चित्रण बहूत अछि तरह

से किया है। समकालीन कथा लेखिकाओं ने न केवल वर्तमान समाज की विसंगतियो, समस्याओं, विडम्बनाओं का चित्रण किया अपितु वर्तमान से जुड़ी भविष्य में आने वाली चुनौतियों की भयावता को भी महसूस कर इस कटु यर्थाथ को कथाओं में परिकल्पना, प्रतिकात्मकता के माध्यम से प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त किया।

लेखिकाओं ने नारी स्वर को बुलंद कर अन्याय का मुकाबला कर लेखन के जरिए कर वर्चस्ववादी व्यवस्था से मुक्ति पाना चाहती है। उनकी कहानियों में स्त्री समस्या के साथ- साथ ऐसी अनेक समस्याएँ मौजूद है जो समाज में घट रही घटनाओं का सुंदर तरीक़े से प्रस्तुतीकरण करती है। लेखिकाओं के कहानियों में आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक ऐसी अनेक समस्याएँ मौजूद है जिन्हें इस अध्याय में प्रस्तुत किया है।

<u>मध्यमवर्गीय समाज की मानसिकता</u>

मध्यमवर्गीय समाज की मानसिकता अनेक आधुनिक जीवनशैलियों, अर्थव्यवस्था की समझ, और सामाजिक संरचनाओं के

प्रति उनकी धारणाओं पर निर्भर करती है। वे सामान्यतः शिक्षा, नौकरी, और सामाजिक आवश्यकताओं की दृष्टि से समझौता करने के पक्ष में होते हैं। अधिकांश मध्यमवर्गीय लोग समृद्धि, सुरक्षा, और सामाजिक समावेश की ओर प्रतिस्पर्धा करते हैं।

अलका सरावगी ने अपनी कहानी 'ये रहगुजर न होती में' एक ऐसे दादा का चित्रण किया है जिसने अपने उसूलों के मुताबिक हमेशा जिया है। उसे परिवार के किसी भी सदस्य से प्यार नहीं था, न ही अपनी पत्नी से और न ही अपने बच्चों से। कहानी का दादा सिर्फ एक ही चीज़ से प्यार करता था और वह था 'पैसा'। कहानी में एक बेटी अपने बाबा से मिलने बरसों बाद अपने बच्चों को लेकर आती है लेकिन उसका बाबा न ही बेटी से ठीक-ठाक बात करता है और न ही उसके बच्चे की तरफ वात्सल्य से देखता है। "कितनी देर से वह बच्चे को गोद में लिये खड़ी है। बाँहें दुखने लगी है। बाबा बच्चे की तरफ नहीं देखते। न ही उसे बैठने के लिए कहते हैं। वह उम्मीद से बच्चे की तरफ देखती है कि शायद वह कुछ आवाज़ करे और बाबा का ध्यान उसकी तरफ चला जाए। पर वह सो गया है।" यहाँ पिता के वात्सल्य की छाया पर अर्थ का प्रभाव कैसे कलुषित करता है, नजर आता है। पुराने संस्कारों में पला बाप अपनी इच्छा परिवारवालों पर लादने का प्रयास करता है। दादा के कठु व्यवहार के कारण उसके बच्चे, पोते सब उन्हें छोडकर चले जाते हैं। दादी के दाह संस्कार

शामिल होने के लिए वे सब आये तो दादा उन्हें अपनी माँ का क्रिया-कर्म नहीं करने देता। बरसों बाद उसकी पोती अपने बच्चों को लेकर उसे देखने आयी थी लेकिन दादा घर के अन्य सदस्यों के बारे में उससे नहीं पूछता है, वह तो हमेशा उसकी संपत्ति का हिस्सा चाहता था "वह पूछना चाहती है बाबा से कि जिन लोगों को आप साहब बता रहे हैं, उन्हें साहब बनाया किसने ? उन्हें अन्याय कराना सिखाया किसने ? इस जिन्दगी में एक बार बाबा से वह यह पूछ लेना चाहती है। पर वह बिना कुछ बोले, पापा की तरह ही बैठी रहती है, जैसे उसके सिर्फ कान हों, जुबान नहीं। तो क्या पापा के अंदर भी इसी तरह शब्द चिल्लाते रहे थे बेआवाज, जैसे उसके अंदर चिल्ला रहे हैं?" अपने अहम् को चोट पहुँचाने पर व्यक्ति अपने परिवार के साथ कितना नीच व्यवहार कर सकता है, पारिवारिक सम्बन्धों में अर्थ की उपस्थिति किस प्रकार का मोड़ लाती है, इन सब का उदाहरण इस कहानी में हैं। (अलका सरावगी दूसरी कहानी पृ. 9,12)

<u>आर्थिक समस्या</u>

रावर्ट यॉह के अनुसार, “आर्थिक समस्या वह समस्या है जिसका सम्बन्ध चुनाव की इस आवश्यकता से है कि क्या, कैसे और किसके लिए उत्पादन करना है तथा आर्थिक प्रगति कैसे प्राप्त करनी है।”

मालती जोशी की 'उसने नहीं कहा' कहानी में महँगाई से परिवार में उपजी समस्याओं का विशेष चित्रण किया है। कहानी में शोभा उसके ससुरजी की दोस्तों के साथ पार्टी की आदतों से परेशान होकर कहती है कि डेढ़ सौ रु. पेंशन हमें देते हैं किन्तु बाज़ार जाकर पता करे तो गश आ जाए। आज की जैसी महंगाई पहले नहीं थी। प्रमोद की पत्नी आर्थिक परेशानी की बातें सह नहीं पा रही है। इसलिए प्रमोद को लगता है कि उसकी माँ इतनी कम तनख्वा में कैसे गुज़ारा करती थी। "याद है उसे, कई बार सब्जी के लिए उबले आलुओं को मसल कर ही माँ ने कथौड़ी बना दी हैं और बच्चों को सिर्फ कोरी दाल रोटी तोड़नी है। कभी उबलते दूध में चावल डालकर खीर बना दी गई है। दोपहर की चाय न मिली तो न सही। कभी महीने का अन्त है तो बच्चे अचार से ही काम चला रहे हैं। इस प्रकार आज महँगाई के कारण सभी की कमर टूट गई है।

'कल्चर' मालती जोशी द्वारा रचित कहानी की प्रिया एक साधारण परिवार के पुरुष अशोक से प्रेम करती है। प्रिया के पिता को अशोक जैसे साधारण व्यक्ति से प्रिया का प्रेम करना रास नहीं आता। इसीलिए वे चालाकी से प्रिया के मन की धुलाई कर देते हैं "प्रिया जब अपने अलग व्यक्तित्व का बोध करने लगती है, तो बड़ी चालाकी के साथ

उसके व्यक्तित्व का रूपान्तर इस तथाकथित नई सभ्यता के अनुरूप ढाला जाने लगता है। यहाँ व्यक्तित्व पर सीधे हमला नहीं किया जाता। व्यक्तित्व रूपान्तरण के लिए दमन नीति का भी प्रयोग यहाँ नहीं किया जाता है। एक सुनियोजित षड्यंत्र द्वारा उसे व्यक्तित्वहीन बनाया जाता है और उसके बाद उसे साँचे में ढाल दिया जाता है।"9 प्रिया को पता चला कि अशोक का प्यार उसे दो समय की रोटी न दे सकेगी। उसके पिता एक हेडक्लर्क हैं और उसकी चार वहिनें विन व्याही हैं। परिणामतः ऊँचे परिवार की प्रिया अशोक को भूल जाती है और एक अन्य उच्च एवं सभ्य वर्ग के लडके के साथ विवाह करने के लिए मन बना लेती है, जो शोभा का डाक्टर देवर है, अमरीका में है। आर्थिक असमानता ने ही प्रिया और अशोक को अलग कर दिया है। प्यार की कसमें खानेवाली प्रिया अशोक के आत्मविश्वास को चोट पहुंचाकर चली जाती है। अतीत से अब तक मध्यवर्ग आगे तो आने में सफल हुआ है, लेकिन इस वर्ग के आचरण में विसंगतियों का अम्बार लगा हुआ है। इन सबके पीछे आर्थिक समस्या ही कायम कर रही है।

<u>पितृसत्तात्मक समाज</u>

जिसमे पुरुषों की प्राथमिक सत्ता होती हैं यानी उन्हें समाज में उच्च माना जाता हैं। राजनैतिक नेतृत्व, नैतिक अधिकार, सामाजिक सम्मान, सम्पत्ति का नियंत्रण की भूमिकाओं में प्रबल होते हैं। परिवार के क्षेत्र में पिता या अन्य पुरुष महिलाओं और बच्चों के ऊपर अधिकार जमाते है। इस व्यवस्था में स्त्री तथा पुरुष को समाज द्वारा दिए गए कार्यो के अनुसार चलना पडता है। धर्म, समाज व रूढ़िवादी परम्पराएं पितृसत्ता को अधिक ताक़तवर बनाती हैं। सदियों से महिलाएं पितृसत्ता के कारण उत्पीड़ित हो रही हैं। पिता ही घर के ठेकेदार होते है पिता से ही घर होता है। अलका सरावगी ने अपने लेखन के ज़रिए पुरुष की प्रभुता पर खुलकर सवाल किये हैं। अपने प्रथम कहानी संग्रह 'कहानी की तलाश में' की 'एक व्रत की कथा' कहानी में अलका सरावगी ने उन धर्म साधनाओं, व्रत उपवासों का विरोध किया है जो शरीर को कष्ट पहुँचाते हैं। वे नारी को इन उपवासों से दूर रहने का आग्रह करती हैं। पूजा-पाठ, संकल्प, उपवास, त्याग-तपस्या इन समस्त साधनाओं का उद्देश्य मन को शुद्ध, शांत, एकाग्र एवं संतुलित रखना है। पति के प्रति पत्नी की निष्ठा जताने के लिए पत्नी को उपवास से शरीर को सुखाने की प्रथा का निषेध अलका सरावगी ने अपनी इस कहानी के ज़रिए किया है। (कहानी की तलाश में पृष्ठ 50)

वृद्ध जीवन की त्रासदी

वृद्धावस्था जीवन की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उम्र मानव जीवन की औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है यह मानव जीवन की स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना है। प्रत्येक जीवधारी को जन्म लेने के बाद क्रमशः बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था से होकर गुजरना पड़ता है वृद्धावस्था को जीवन संध्या भी कहा जाता है क्योंकि यह जीवन का अन्तिम पडाव होता है इस अवस्था में शारीरिक क्षमताएं क्षीण होने लगती हैं और व्यक्ति अनेक गंभीर समस्याओं से घिर जाता है। वह दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ हो जाता है। नई पीढ़ी के लोग पुरानी पीढ़ी के व्यक्तियों के विचारों को समझ ही नहीं पाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्ड के अनुसार किसी भी समाज में 60 वर्ष की आयु वाला व्यक्ति वृद्ध माना जाता है। वर्तमान समय में वृद्धजनों की समस्याएं बढ़ती चली जा रही हैयह समस्याएं मुख्यतः उनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, एवं व्यक्तिगत, मानसिक रूप से जुड़ी है। इस अवस्था में धन की आवश्यकता के साथ प्रेम, मानसिक संतोष एवं सहयोग की आवश्यकता रहती है। परन्तु अधिकांश वृद्धजन इन्ही से वंचित है। इसी विचार से प्रेरित होकर उक्त कार्य प्रस्तावित है। मालती जी की 'कबाड़' कहानी की बूढ़ी माँ

अंधी हो गई है। इलाज न होने से वह सच में कबाड़ जैसी दिख रही है। वह जैसे भी हो चलना-फिरना चाहती है पर बहू ने उन्हें साडी की जगह लहँगा पहना दिया है। शर्म के कारण माँ दिन-रात कमरे से बाहर नहीं निकल पाती। 'मेहमान' कहानी की वृद्ध माँ तो पूरा घर संभालती है। नौकरी करनेवाले बहू-बेटा, डॉक्टरी पढ़नेवाला छोटा बेटा, ससुराल गई हेम बेटी सबको एकसूत्र में बांधे रखने का काम माँ करती है। रिटायर्ड पति की सेवा का जिम्मा भी उन्हीं का है। वृद्धावस्था में पूरे परिवार की जिम्मेदारी उठाकर वह भावुक बन गई है। मन से एवं शरीर से काफी थक चुकी है। अपनी कमजोरी बताते हुए माँ कहती है, 'कई बार कैसा कैसा दर्द उठा करता है- कभी सीने में, कभी पेट में। कभी जोड़ जम जाते हैं। कभी सिर पर जैसे हथौड़े से पड़ने लगते हैं। कभी पाँव मन-मन भर के हो जाते हैं। तब चुपचाप पड़ी रहती हूँ। क्या करूँ। (आपने आँगन की छाँव,, पृ. 17)

सुधा अरोड़ा जी की 'काँसे का गिलास' कहानी में वृद्ध जीवन की अलग ही दास्तान दिखाई देती है। चिल्की की दादी उसे अपनी दादी का किस्सा सुनाती है अपनी दादी की कमजोरी बताते हुए वह कहती है कि, 'पर दादी तो एक बार गिरीं तो फिर नहीं उठीं। कुल्हे की हड्डी चटक गई थीडेढ़ महिने टांग पर वजन बंधा रहा। हड्डी की तरेड तो ठीक हो सुख गई। पर जब तक हड्डी जुड़ती टांगे बिस्तर पर पड़े पड़े सूख गई। अब टांगों ने उनका वजन उठाने से इनकार

कर दिया था। बुढ़ापे में अगर एक बार वृद्ध ने बिस्तर पकड़ लिया तो वह दुबारा ठीक नहीं हो सकताएक के बाद एक शरीर के पूर्जे काम करना बंद कर देते हैं। 'उधडा हुआ स्वेटर' कहानी के दोनों वृद्ध शारीरिक शिथिलताओं को झेल रहे है। पैंसठ साल की शिवा न सुन सकती है, न ठीक से देख सकती है। वह उँगलियों की जकड़न से परेशान हैउसकी पीठ में भी दर्द हैशिवा की बीमारी एवं तकलीफ दिखाते हुए सुधा जी लिखती है, 'व्हेन ब्रेन कान्ट होल्ड एनी मोर स्ट्रेस, इट रिलीजेज स्पाज्म इ द बैक (जब दिमाग तनाव झेल नहीं पाता तो उस जकड़न को नीचे पीठ की तरफ सरका देता है।) तब आपकी गर्दन और आपके कन्धे अकड़ जाते हैं और दुखने लगते हैं। आप कन्धे का इलाज करते चले जाते हैं जब कि इलाज कन्धे की जकड़न का नहीं, दिमाग में जमकर बैठे तनाव का होना चाहिए।' शिवा कई छोटी-छोटी बीमारियों से परेशान रहती है। वृद्धावस्था में अत्यधिक तनाव कई बीमारीयों को न्यौता होता है। (काँसे का गिलास पृष्ठ ३) तथा अलका सरावगी ने अपनी कहानी 'खिंजाब' में अपने बेटे और उसके परिवार के होते हुए भी जीवन में अकेले होने वाली बूढ़ी औरत दमयन्ती का चित्रण किया है। उसकी आँखों का आपरेशन हुआ है। लेकिन उस वक्त भी उसका बेटा और परिवार दमयन्ती का साथ नहीं होते - "कमरे में मरे हुए सन्नाटे को तोड़ने के लिए उसने पूछा - 'भैया-भाभी आएँगे क्या ऑपरेशन के समय ? पूछते-पूछते ही

उसे लगा कि उसने बहुत बेवकूफी भरा प्रश्न पूछ डाला है। दमयन्तीजी ने मुँह टेढ़ा कर ऐसा कहा - 'अपने ऑफिस के आदमी को ही भेज देंगे। आस्पताल का बिल चुकाने यहाँ क्या कम है।' कहकर उन्होंने अपनी आँखें फिर बन्द कर लीं।'" अक्सर परिवार में माँ-बाप के बूँढ़े हो जाने पर बच्चों का उनके प्रति जो व्यवहार है वह बहुत बुरा होता है। वे उनकी बातें सुनने और उनकी देखभाल करने तक तैयार नहीं होते। यहाँ लेखिका ने अपने जीवनसाथी के मिल जाने या फिर ऊँचे पद पर पहुँच जाने पर अपने माँ-बाप का ध्यान न रखनेवाले और उन्हें प्यार न देने वाले बच्चों पर व्यंग्य किया है। मालती जोशी जी की 'आश्वस्ति' कहानी की वृद्ध माँ बुढ़ापे में जल्दी से नहा नहीं पाती। इस वजह से परदेस जाने वाला बेटा उसे बिना मिले ही चला जाता है। बेटे की आवाज सुनकर वह जल्द नहाने की कोशिश तो करती है पर असफल रहती है। वृद्धावस्था में लाख कोशिश करने पर भी जल्दी से काम पूरा नहीं होता। पूरी जिंदगीभर के परिश्रम से, कष्टों से थके पूर्जे काम करना बंद कर देते हैं। बेचारी माँ की कमजोरी एवं शिथिलता चित्रित करते हुए मालती जी लिखती है, 'कितना भी चाहो इस उम्र में हाथ-पाँव जल्दी-जल्दी चलते भी तो नहीं। हड़बड़ाहट में साबुनदानी हाथ से छिटक दूर जा गिरीतौलिया बाल्टी में जा पड़ा। किसी तरह कपड़े फँसाकर बाहर निकलीं तो याद आया कि चश्मा तो

बाथरुम की खिड़की में ही छूट गया है। उसे लेने दुबारा जाना पड़ा। लौटीं तो बुरी तरह हांफ रही थीं।

<u>किशोरावस्था की समस्याएँ</u>

किशोरावस्था में कई समस्याएँ हो सकती हैं, जैसे कि शारीरिक बदलाव, मानसिक तनाव, आत्मविश्वास की कमी, स्तनों का विकास, सम्बंधों में परेशानी, और शिक्षा या करियर से जुड़ी चिंताएँ। किशोरों को इन समस्याओं को समझने और समाधान के लिए सहायता और समर्थन की आवश्यकता होती है। किशोर अवस्था का विशेष अध्ययन कई मनोवैज्ञानिकों ने किया है। किशोर अवस्था काम भावना के विकास की अवस्था है। कामवासना के कारण ही बालक अपने में नवशक्ति का अनुभव करता है। वह सौंदर्य का उपासक तथा महानता का पुजारी बनता है। उसी से उसे बहादुरी के काम करने की प्रेरणा मिलती है। अलका सरवगी जी की 'टिफिन' कहानी में किशोरावस्था की समस्याओं को उभारा है। इस कहानी की नायिका सारिका छात्रा है। सारिका किशोर उम्र की है, उसकी चार सहेलियाँ है - अरूणा, जया, रश्मि, विद्या। यह कहानी सारिका के मन में उठनेवाले सभी विचारों के उतार-चढ़ाव की कहानी है। सारिका अपनी दादी से अत्याधिक प्रेम करती है, वह अपनी सारी समस्याएँ भी दादी को ही

बताती है और दादी भी उसे उन समस्याओं का हल हमेशा बताती रहती है। विद्या नामक उसकी सहेली कभी भी टिफिन नहीं लाती थी। एक बार जब विद्या गायब हो जाती है तो उसका बड़ा भाई सारिका से उसके बारे में पूछता है और कलम और डायरी देकर उसे वह जो जानती है लिखने के लिए कहता है, तब सारिका उसे स्वयं लिखने के लिए कहती है और कहती है कि विद्या चार सालों में कभी भी टिफिन नहीं लाई। यह सुनकर विद्या का बड़ा भाई हैरान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सारिका ऐसी लड़की है जो रूढ़िवादी विचारधारा को न मानकर आगे बढ़ने की इच्छा रखती है।

अंधविश्वास का विरोध

अंधविश्वास कोई भी ऐसा विश्वास या प्रथा है जिसे गैर-व्यवसायियों द्वारा तर्कहीन या अलौकिक माना जाता है , जिसका श्रेय भाग्य या जादू , कथित अलौकिक प्रभाव या अज्ञात चीज़ के डर को दिया जाता है। यह आमतौर पर भाग्य , ताबीज , ज्योतिष , भाग्य बताने , आत्माओं और कुछ असाधारण संस्थाओं से जुड़ी मान्यताओं और प्रथाओं पर लागू होता है , विशेष रूप से यह विश्वास कि भविष्य की घटनाओं की भविष्यवाणी विशिष्ट असंबंधित पूर्व घटनाओं द्वारा की जा सकती है। अलका सरावगी जी की 'एक व्रत

की कथा’ प्रस्तुत कहानी में पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार, अंधविश्वास का विरोध किया है इस कहानी में एक नवयुवती जो किसी भी व्रत, पूजा, पाठ, त्यौहार का विरोध करती है। उसकी साँस उसे हमेशा ऐसा न करने को कहती है और उसे कहती है कि उसकी माँ ने उसे कहा था कि यदि कोई भी औरत पुरुषों के पहले खाती है तो उसे पाप का भागीदार बनना पड़ता है। पर इस पर भी वह नवयुवती इस बात को नहीं मानती है। वह अपने पति और बेटे से पहले ही खाना खाती है।इस प्रकार इस कहानी में रूढ़िवादी विचारधारा, व्रत-पूजा, त्यौहारादि का विरोध किया है।

राजनीतिक यथार्थ

'राजनीति' शब्द 'राज' तथा 'नीति' दो शब्दों के योग से बना है। प्रायः 'राज' से राज्य तथा 'नीति' से नियम, अर्थ लगाया जाता है। डॉ. सरिता वाशिष्ठ के अनुसार- "आज तो राजनीति का अर्थ ही बदल गया है। आज नीति का राज न होकर राज की नीति है। किसी भी तरिके से राज्य हथियाने की नीति है। आज के शासकों तथा नेताओं का राजनीति के प्रति दृष्टिकोण पूर्णतः परिवर्तित हो गया है। थोड़े शब्दों में कहा जाए तो हम कह सकते हैं कि आज की राजनीति कुनीति है, रपट वाली राजनीति है।" स्वतन्त्रता के सात

दशक पूरे होने वाले हैं परन्तु राजनीति का चेहरा कुरूप होता जा रहा हैराजनीति का जो रूप होना चाहिए, वह निःसन्देह आज लुप्त हो गया है। डॉ. कुसुम अंसल के आलोच्य कथा साहित्य में से पाँच कहानियों में राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है।

डॉ. कुसुम अंसल की 'मैं आ गया हूं' इस कहानी का सौरभ विदेश से देश लौट आया है और यहाँ के माहौल को जानने के लिए टेलीविज़न देखता रहता है। सौरभ कहता है कि "मैं भी यहाँ के माहौल को जानने के लिए देखता रहता हूँ परंतु यह क्या, यह नेताओं जैसे चेहरे उभरकर जाने किस भाषा में पता नहीं क्या बोलते हैं, मुझे डिप्रैशन होने लगता है-फूलन देवी, राबड़ी देवी, मायावती, देवियां लिपस्टिक वाली वह औरत सब मेरी चेतना पर दस्तक देती हैं। भारत इनके हाथ की गुड़िया भर है; जैसे, जी चाहे हिलायें-डुलायें और मोटी तोंद वाले, दाढ़ी-मूंछ, आधी-अधूरी धोतियां कपड़े पहने ये नेता लोग उस गुड़ियां का जैसे बलात्कार कर रहे हैं। इन लोगों के ऊपर निर्भर है हमारे देश का भविष्य, ये हैं हमारे विश्वासों की बुनियाद?"" यहाँ राजनेताओं की स्वार्थी राजनीति पर प्रकाश डालते हुए लेखिका ने देश को राजनेताओं के हाथ की गुड़ियाकी उपमा दी हैजिस तरह गुड़िया को जी चाहे हिलायें-डुलायें जाता हैं उसी तरह देश के भविष्य के साथ ये राजनेता खिलवाड़ करते हैं इस पर कुसुम अंसल जी ने प्रखरता से अपने विचार व्यक्त किये हैं।

'मेरे आशिक का नाम' इस कहानी में डॉ. कुसुम अंसल ने हिंदू-मुस्लिम में हुए झगड़े और उसमें मारे गये लोगों के बारे में सुक्ष्मता से वर्णन किया है। इस कहानी में एक राज्यपाल का बेटा उसकी नीलोफर नामक आशिकी पर अपनी ३२ बोर की लाइसेंसशुदा पिस्तौल से गोली दाग कर उसकी लाश को मंदिर के सामने डालता है। इसी वज़ह से हिंदू-मुसलमान में झगड़े प्रारंभ होते हैं। इस विषय में दरबान बड़े गर्व से उपमा को कहता है कि "रात को बात उठी नहीं, अब सुबह नीलोफर की लाश लोगों को मंदिर के सामने पड़ी मिलीबस तब से झगड़ा चालू है। पहले मंदिर के सामने लड़ाई-झगड़ा हुआ, अब यहाँ बड़े बाजार में नीलोफर के घर के सामने हो रहा है। बात फिर आशिकी की नहीं रहती न, बात हिंदू-मुसलमान की हो जाती है। मुसलमानों ने चालीस हिंदू मार डाले हैं..., '२५ इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि आज की राजनीति साम्प्रदायिकता पर आधारित है।

डॉ. कुसुम अंसल की 'गुम होती गौरेया' इस कहानी का हबीब सिद्दिकी रूबीना से कहता है कि "मुझे लगता है कि यह सांप्रदायिकता का कम्युनलिज्म इनसानियत का दुश्मन है.." इस बात पर रूबीना उसे कहती है-"...यह सांप्रदायिकता का सवाल हिंदू-मुसलमान तक ही क्यों सीमित रह जाता है, जबकि हिंदुस्तान में संप्रदायों के तौर पर सिख, ईसाई, पारसी, सिंधी सभी रहते हैं और जबकि इतिहास गवाह है, हमारी पौराणिक कथाएँ गवाह हैं कि जितनी लड़ाइयाँ हिंदू-मुसलमानों ने लड़ी,

मंदिर-मसजिद तोड़े, उतना ही प्रेम भी किया। मुगल शासकों ने हिंदू राजा, महाराजाओं की बेटियों से ब्याह किए।" यहाँ लेखिका ने सांप्रदायिकता हिंदू-मुसलमान तक ही क्यों सीमित रह जाती है? यह सवाल पूछते हुए सांप्रदायिकता पर मार्मिक ढंग से अपने विचार व्यक्त किये हैं।

<u>पारिवारिक समस्याएँ</u>

पारिवारिक मुद्दे ऐसी समस्याएँ हैं जो परिवार में भावनात्मक या शारीरिक तनाव का कारण बनती हैं। मालती जोशी की कहानी 'पिया पीर न जानी' में रमा को उसके पति की अकर्मण्यता के कारण पूरे परिवार सहित देवर के घर आश्रय लेना पड़ता है। किन्तु वहाँ भी देवरानी के भेदभाव भरे आचरण के कारण रमा को सांस लेना मुश्किल हो जाता है। इसलिए वह नौकरी करने का फैसला करती है। तब पति भी उसके साथ जाने को तैयार होता है क्योंकि पति का परिवार में कोई स्थान नहीं है। अम्मा, नौकर-चाकर तक उसका तिरस्कार करते हैं। निठल्ले पति की पत्नी को कोई भी महत्व नहीं देतारमा को किसी पर बोझ बनना पसन्द नहीं आताअकेली औरत कब तक जीवन की गाड़ी खींचेगी। पति जब काम करने की बात करता है तब पत्नी कहती है - "काश !

यह तुम पन्द्रह साल पहले, बीस साल पहले सोचते तो ज़िन्दगी की शक्ल कुछ और होती। अब तुम्हारा पछतावा मेरे किस काम का? अब तुम्हारी ये पेशकश मुझे न मेरे बीते हुए दिन लौटा सकती हैं, न मेरे खोए हुए बच्चे। अब तुम्हारा यह सोचना, यह कहना सब बेकार हैं-बेकार हैं।" तात्पर्य यह है कि रमा को जीवन भर अकेली होकर ही परिवार चलाना पड़ा। उम्र के आखिरी पड़ाव में पति से वह अपेक्षा नहीं रख सकतीइसलिए दर-दर की ठोकरें खाने के बाद उसे नौकरी का निर्णय लेना पड़ता है। यहाँ पत्नी अथवा माता का परिवार पर प्रभाव दिखाई देता है।

नई तथा पुरानी पीढ़ी में मतभेद

नई और पुरानी पीढ़ी के बीच आज ही नहीं, बल्कि हमेशा से विषमता रही है। इन दोनों के बीच असली समस्या है कि पुरानी पीढ़ी यह नहीं समझती कि उनकी उम्र ढल गई है और युवा पीढ़ी ये समझती है कि अब वे काफी बड़े हो गए हैं, उनकी उम्र इतनी हो गई है कि वे सबकुछ कर सकते हैं। दोनों के बीच सारी समस्या ही यही है। कोई और उस जगह पर कब्जा जमाए हुए है जिसे आप हासिल करना चाहते हैं। ऐसा सिर्फ इंसानों में ही नहीं होता। खासकर, हाथियों में भी यह चीज देखने को मिलती है। कभी अचानक आप देखेंगे कि एक जवान भरा-

पूरा हाथी हर तरफ भाग रहा है, नाराज होकर वह हर चीज खींच रहा है, गिरा रहा है, क्योंकि उसकी लड़ाई अपने झुंड के किसी बड़े नर हाथी से हुई होती है। चूंकि वह बड़ा हाथी अपनी जगह नहीं छोड़ रहा होता, इसलिए यह युवा हाथी उससे लडऩे की कोशिश करता है। नौजवान हाथी लड़ नहीं पाता, क्योंकि उसमें उस बड़े नर हाथी से लडऩे की ताकत नहीं होती, इसलिए वह जोश में आकर अपने तेवर दिखाता है। मालती जोशी द्वारा रचित 'अपने-अपने दायरे' कहानी में नई और पुरानी पीढ़ी के अपने-अपने विचार प्रकट हुए हैं। अम्मा की मृत्यु गाँव में हुई, इसलिए बाबूजी भी गाँव में ही मरना चाहता है। लेकिन बहू पुष्पा का गाँव में दम घुटता है क्योंकि उसे शहर में रहने की आदत है। उसका पति योगेश भी माता-पिता की खुलकर सेवा नहीं कर सकता। बहू स्वार्थ के कारण गहनों पर नज़र रखकर गाँव जाने के लिए तैयार हो जाती है। "अपना सामान बाँधते हुए पुष्पा ईश्वर से मना रही थी कि हे भगवान ! अब दुबारा यहाँ न आना पड़े।" यहाँ बहू-बेटे को स्वार्थी रूप में चित्रित किया है। वहू को लगता है कि बाबूजी मरने के बाद गाँव में ही आना चाहते हैं तो जीते-जी इनका भार कौन उठायेगा? पति और पत्नी दोनों रथ के दो पहियों के समान होते हैं। दोनों में से एक की भी मृत्यु हो जाती है तो वृद्धावस्था में, बहू-बेटों के जमाने में अपने साथी की कमी हमेशा महसूस होती है और जीवन रथ आगे बढ़ाना मुश्किल हो जाता है।

शिक्षित बेरोजगारी

शिक्षित बेरोजगारी एक प्रकार की बेरोजगारी है जहां शिक्षित लोग अपनी दक्षता के अनुसार नौकरियों की तलाश करते हैं। हालाँकि, शिक्षित बेरोजगारी में , शिक्षित लोग अपनी खोजों के बावजूद वांछनीय नौकरियाँ पाने में असमर्थ होते हैं। मालती जोशी की 'बोर' कहानी में गुप्ता नामक लडका बेरोजगार है। इसलिए सभी को वह बोर लगता है। किन्तु जब उसे नौकरी मिलती है तब उसे अपने व्यक्तित्व में फर्क नज़र आता है। "नौकरी मिलते ही उसके चेहरे पर थोडी ताजगी आ गई थी। कपड़ा भी ज़रा ढंग से पहना था। प्रवीण ने पैण्ट के कपडे की तारीफ की; तो वह काफी खुश हो गया था।" बेरोजगार व्यक्ति की एक विडम्बना यही है कि वह सब कुछ जानते हुए भी रोज़गार व्यक्ति के समान कुछ बोल न सकता क्योंकि उसके पास धन्धा और धन की कमी है। उसे उपदेश देने, आलोचना करने या मज़ाक करने में ही लोग लगे रहते हैं लेकिन सहानुभूति व सहारा देने व उसे समझ पाने को भूल जाते हैं। मालती जोशी की प्रतिपाद्य दो कहानियों में ही शिक्षित बेरोजगारी का चित्रण पाया जाता है।

निष्कर्ष

लेखिकाओं के कहानियों में एक प्रकार वास्तविकता नज़र आती है। आज भी समाज में ऐसी अनेक स्थितियाँ है जिन्हें नज़रअन्दाज़ किया जाता है लेकिन इन्ह स्त्रियों ने मन में किसी प्रकार का भय न रखकर समाज में घट रही घटनाओं को लोगों के सामने लाया है ताकि पाठक उनसें रूबरू हो सके और समाज में जागरूकता निर्माण हो।

संदर्भ

१ सरावगी, अलका, दूसरी कहानी (सजिल्द). राधा कृष्ण प्रकाशन, 2002 पृष्ठ 9,12

२ अरोड़ा सुधा, मेरी प्रिय कथाएं, ज्योतिपर्व प्रकाशन , दिल्ली, 2012

३ सरावगी, अलका, कहानी की तलाश में, 2005 , राजकमल प्रकाशन पृष्ठ 15

४ वही, पृष्ठ 16

५ नासिरा शर्मा, खुदा की वापसी, दिल्ली, 1998, पृ. 30,31.

६ अंसल, कुसुम,

७अरोड़ा सुधा, महानगर की मैथिली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1987, पृष्ठ 4

८ अरोड़ा सुधा, कांसे का गिलास, पांच लंबी कहानियां - आधार प्रकाशन, पंचकूला ,हरियाणा, 2004, पृष्ठ 11

९ जोशी, मालती, लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन,1 जनवरी 2016, पृष्ठ 13

चतुर्थ अध्याय

कहानियों की भाषा शैली

कहानियों की भाषा शैली

प्रस्तावना

समकालीन कहानी का शिल्प अत्यंत आकर्षक और समृद्ध है। शिल्प का कैनवास इतना विस्तृत और व्यापक है कि पाठक इससे एक सुखद अनुभूति प्राप्त करता है। कहानी की शिल्प योजना में भाषा-रचना विधान (शैली) का अत्यधिक महत्व है। भाषा ही कहानीकार की सफलता असफलता की कसौटी है। भाषा वह साधन है जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों एवं भावों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। किसी भी

साहित्यिक कृति की सफलता उसकी भाषा, शैली या रचनात्मक संगठन पर निर्भर करती है।

कहानी एक भाषात्मक कला है। भाषा की समस्त कलाओं का कहानी में प्रदर्शन होता है। कहानीकार के पास , अपनी बाते प्रभावकारी ढंग से कहने के लिए, भाषा के अतिरिक्त कोई दूसरा साधन नहीं रहता। भाषा की सम्पूर्ण शक्तियाँ कथा की रचना में कार्यरत रहीं है। भाषा के सभी साधनों ध्वनि , वर्ण, शब्द, अर्थ, वाक्य, अलंकार, व्यंग का कहानी में अधिकाधिक उपयोग होता है।

एक लेखक की कृती तभी सफ़ल कहलाती है जब वह स्पष्ट शैली के माध्यम से अपने विचार पाठकों तक सरलतापूर्वक पहुचा सके। कहानियों में भाव -पक्ष का होना जितना आवश्यक है, उतना ही भाषा-शैली का होना महत्वपूर्ण है। भाव-पक्ष साहित्य की आत्मा है, तो भाषा-शैली साहित्य का शरीर है। जिस प्रकार आत्मा को शरीर से अलग नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार भाव-पक्ष और शिल्प-पक्ष को अलग नहीं हो सकते। ।

भाषा-शैली के माध्यम से कथावस्तु ज्यादा प्रभावित होती है। कथावस्तु अच्छी हो और शिल्प में कलात्मकता न हो तो, वह रचना प्रभावशाली नहीं हो सकती। सिर्फ शिल्प में नए-नए प्रतिमानों का अन्वेषन किया जाए और कथानक में जान नहीं है, तो वह रचना असफल कहलायेगी। इसलिए चाहे वो कथासंग्रह हो या कोई और साहित्यिक विधा भाव-पक्ष और शिल्प-पक्ष दोनों का होना महत्वपूर्ण है।

भाष-शैली के माध्यम से लेखिकाओं ने अपनी - अपनी रचनाओं को न्याय दिया है। कहानियों में लिए गए पात्रों के चरित्र तथा मनोभावों का अच्छी तरह उल्लेख उन्होंने किया है। समकालीन लेखिकाओं की भाषा बिल्कुल अपनी है। उन्हें जैसी चीजें आसानी से समझ में आती वह वैसे भाषा, बिम्ब एवं संरचनाओं को गढ़ लेते है।

यह पर केवल अलका सरवगी, सुधा अरोड़ा, नसीरा शर्मा , मालती जोशी , कुसुम अंसल के कहानियों की भाषा का विस्तार से विवेचन किया गया है।

लेखिकाओं की भाषा

अलका जी के कथा साहित्य में सर्वत्र भाषा का सहज विकास दिखाई देता है। प्राचीन एवं नवीन के मध्य सामंजस्य की स्थापना में अलका जी की विविध भाषा शैली का भी योगदान है। अलका जी द्वारा प्रयुक्त प्रतीक एवं बिम्ब भी विशेष है। हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अलका जी की सर्जनात्मक भाषा का विशिष्ट योगदान है।

नासिरा शर्मा देश के सुप्रसिद्ध साहित्य - जगत् की लेखिका हैं। वे हिंदी, उर्दू, फारसी, पश्तों, अँग्रेजीआदि भाषाओं में उनकी अच्छी पकड़ हैं तथा मूर्धन्य कथाकार मानी जाती हैं। नासिरा शर्मा की भाषा उनके भावों और उद्देश्यों की वाहिका है। उन्होंने अपने कहानियों में पात्रों का स्तर एवं उनकी परिस्थिति के अनरूप ही भाषा का अवलम्बन किया है। अतः उनकी शिक्षा फारसी में होने के कारण अरबी और फारसी शब्दों की भरमार दिखाई देती है, लेकिन पाठकों को कहीं भी इसकी कठिनाई महसूस नहीं होती है, क्योंकि उनका आरम्भिक जीवन इलाहाबाद में गुजरा है। अतः इलाहाबादी सभ्यता की मिठास और बोलचाल की साधारण गली मौहल्ले की भाषा से लेकर शिक्षित वर्गों की विविध स्तरीय भाषा के साथ कहीं ब्रज का पुट देने में नासिरा शर्मा अद्भुत क्षमता रखती है। नासिरा शर्मा के कहानियों में भाषा के विभिन्न् रूप देखने को मिलते हैं, जिससे इनके कहानियों की भाषा बड़ी ही सुदृढ़, सरल और प्रभावशाली दिखलाई देती है।

डॉ कुसुम अंसल की कहानियों की भाषा शैली अत्यंत सरल, संवेदनशील, और जीवंत है। उनकी कहानियाँ सामाजिक मुद्दों पर ध्यान देती हैं और आम जनता की जीवनशैली को अभिव्यक्त करती हैं। उनकी भाषा में साधारणत: लोकप्रिय शब्दों और वाक्यांशों का उपयोग होता है जो पाठकों को सहज रूप से समझ में आते हैं।

सुधा अरोड़ा की कहानियों की भाषा शैली उत्कृष्ट और संवेदनशील है। उनकी कहानियों में सादगी और गहराई है, जो पाठकों को कहानी के किरदारों की भावनाओं और अनुभवों को समझने में मदद करती है। उनकी भाषा में अक्सर अलंकार, विराम चिन्ह, मुहावरे और चित्रात्मक शैली का उपयोग होता है जो उनकी कहानियों को और भी रंगीन बनाती है तथा भाषा में सरलता और संवेदना भी है, जिससे पाठक कहानी में सहजता से समाहित होता है।

मालती जोशी की भाषा-शैली बेहद सरल, सुगम और सहज है। उनके सभी पात्र आम जीवन से प्रेरित हमारे-आपके बीच के क़िरदार हैं। अधिकतर कहानियाँ स्त्री-प्रधान हैं किन्तु न तो वे दबी-कुचली अबला नारी होती है और ना ही शहरी, ओवरस्मार्ट कामकाजी लडकियाँ - उनके सभी पात्र यथार्थ के धरातल से निकले वास्तविक-से प्रतीत होते हैं।

लेखिकाओं की कहानियों में स्पष्टता, सरलता, प्रभावमयता, स्वाभाविकता, सहजता आदि भाषा की विशेषताएँ दुष्टिगोचर होती है। उनके कहानियों में शब्दों के विविध रुप प्रयुक्त हुएँ है। उन्होनें इसमे खड़ी- बोली के साथ देश-विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है। कहानियों में तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी, अरबी-फारसी, उर्दू, निरर्थक शब्द, पूरक शब्द, ध्वन्यार्थक शब्द, द्विरुवत शब्द आदि मिलते है।

तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग

हिन्दी भाषा में हम आज भी संस्कृत के बहूत से शब्दों का प्रयोग करते है, लेकिन हिन्दी भाषा में प्रयोग होने पर भी वें परिवर्तित नहीं होते उन्हें तत्सम शब्द कहते हैं। लेखिकाओं ने सहज स्वाभाविकता के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, जिसमे पूर्ण रुप से भावों की अभिव्यक्ति तथा बोधगम्यता मिलती है। इन्ह कहानियों में उल्लेखित कुछ तत्सम शब्द इस प्रकार है। जैसे-सप्ताह, बीज, कलाकार, अनुशासन, अजीर्ण, फ्लाश, आत्महत्या, क्षेत्र', 'मुख', 'आत्मा', 'संघर्ष', 'ईश्वर', 'कर्तव्य', 'पत्र', 'मस्तिष्क', 'विवाह', 'उत्साह',, 'राजनीति', 'सवर्ग', 'समय', 'स्पर्श', 'कर्म' 'मित्र', 'आश्रय' आदि।

तद्भव शब्द ; जिन संस्कृत शब्दों का हिन्दी भाषा में उल्लेख करने से जिनका रुप परिवर्तित होता है, वें तद्भव शब्द कहलाते है। भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए लेखिकाओ ने तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव शब्दों का भी कहानियों में प्रयोग किए है। उदाहरण 'भिकमंगा, गिलहरी, आंख, खोह, सिहरन, ठौर, आग', 'आठ', 'केला' 'पंछी', 'मुँह', 'ब्याह', 'आँसू', 'ममता', 'रात', 'आँखें', 'क्षमा', 'अंधकार' 'कुआँ' आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।

विदेशी शब्दों का प्रयोग

हिन्दी भाषा में उर्दू शब्द भी मिलते है, ये उर्दू शब्द अरबी-फारसी भाषा से उत्पन्न हुए है। इसके अलावा अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी सभी भारतीय भाषाओं में होता है।

अरबी-फारसी शब्द : 'दफ्तर', 'अखबार', 'गुलदस्ते', 'उपहार', 'मामला', 'लाश', 'हवा' 'एकदम', 'तोहफें' आदि|

उर्दू शब्द : 'रफ्तार', 'गलतफहमी', 'फर्ज', 'मंजिल', 'सलाह-मशवरा', 'मुस्कुराट', 'मुसीबत', 'खूबसूरत', 'आदि|

अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग : नो हीटिंग एंड नो मेल्टिग, आई एम वेरी सीरियस, जज नोट व्हाय, यू शैल वी जज्ड टू, 'डाइनिग हॉल', 'डॉक्टर', 'ट्रे', 'ट्रेन', 'स्टेशन', 'प्रोग्राम', 'ऑफिस', 'फोटो', 'फ़ाइल', 'नंबर', 'प्रोजेक्ट', 'मम्मी', 'कलेक्टर', 'बी. कॉम', 'विस्कि', 'हैलो', 'कोलोफोनिया', 'इंजेक्शन', 'रिलैक्स', 'ट्रान्सफर', 'हाइपरटेंशन', 'फ़ाकशन', 'कीपिंग', 'फोर्स', 'पाईकीलर', 'कैप्सुल', 'गौरंटी', 'कॉलेज', 'प्रिन्सिपल', 'इंटेर्वीव', 'मीटिंग', 'पिज्जा', 'पार्टी', 'सर्प्राइज़', 'बेडरेस्ट', 'फ़र्निचर', 'होटल', 'मैनेजर', 'व्रइटिंग पेड़', 'गोवेर्नर', 'स्कूटर', 'कहरे', 'सिग्रेट', 'ट्रेनिंग' आदि।

अँग्रेजी के आधे-अधूरें वाक्य का प्रयोग- 'एस्क्यूस मी', 'वैल्कम टू एडम वर्ल्ड','हॅप्पी बर्थड़े', 'मेडिकल टेस्ट'।

ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग : लेखिकाओं ने भाषा में सजीवता लाने के लिए और वातावरण की यथार्थ स्थिति का चित्रण करने के लिए इन शब्दों का उल्लेख कहानियों में किया है। उदाहरण 'ट्री---ट्रीट्री', 'तू तू मैं-मैं', दर्प की बू----हूँ आदि ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

निरर्थक शब्दों का प्रयोग : 'अगर-मगर', 'मेल-मिलाप', 'जल-जन्तू', 'तना-उलाहना', 'दुलारा-पुचकारा', आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग लेखिकाओं ने भाषा में स्वाभाविकता का प्रवाह लाने के लिए किया है।

द्विरुवत शब्दों का प्रयोग : ऐसे शब्द भाषा के सौंदर्य में अभिवृध्दि लाते है, इसलिए इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।लेखिकाओं ने भी अपनी कहानियों की भाषा को सहज तथा प्रवाहमय बनाने के लिए इनका उपयोग किया है। उदाहरण; 'दूर-दूर', 'ऊंचे-ऊंचे', 'काले-काले', 'देखते-देखते', 'नन्ही-नन्ही', 'कैसे- कैसे', 'भारी-भारी', 'भोली-भोली', 'रहते-रहते', 'अपनी-अपनी', 'कभी-कभी', 'किसी-किसी', 'होते-होते', 'क्या-क्या', 'दौड़ी-

दौड़ी', 'ज़ोर-ज़ोर', 'पटक-पटक', 'दिला-दिला', 'दबी-दबी', 'करती-करती' आदि।

पूरक शब्दों का प्रयोग : 'पसंद-नापसंद', 'रहन-सहन', 'माता-पिता', 'मन-समान', इच्छा-अनिच्छा', 'रात-दिन', 'छोटे-मोटे', 'भाई-बहन', 'भोली-भालि', 'रीति-रिवाज', आदि शब्दों का उल्लेख भी इस कहानियों में मिलता है।

मुहावरें-कहावतें एंव लोकोक्तियों का प्रयोग : भाषा को प्रभावशालि तथा सजीव बनाने के लिए मोहावरें-कहवाते एक लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। अपनी कहानियों की भाषा को स्पष्टता प्रदान करने के लिए और अपने भावों या विचारों को स्पष्ट रुप से प्रस्तुत करने के लिए इन सब का उपयोग किया

मुहावरों का प्रयोग - आंख मूंद लेना (बीज) अजीब सी निगाहों से देखना मिसेज डिसूजा के नाम, शर्म से लाल हो जाना (टिफिन) हक्के बक्के रहना उद्विग्नता का एक दिन, 'आँखें मुदना', 'पैरो तले की जमीन खिसकाना', 'खून-खौलना', 'नाक कट जाना', 'चेहरा खिल उठना', 'दाँतो तले उँगली दबाना', 'रोम-रोम जलने लगना', 'तिलमिला उठना', 'फुली नहीं समायी', 'आग बबूला हो उठना', आदि मुहावरों का प्रयोग किया गया है।

कहावते - “तिल का ताड़ मत बनावा कर महि...”? 'दहेज ल नहीं तो देह जला...' आदि।

लोकोक्तियाँ- जैसे- “ऊँची दुकान के फीके पकवान” “एक तरफ कुआँ तो दूसरी तरफ खाई” आदि।

सूक्तियाँ- जीवन के अनुभव के सत्य को कहानियों ने सूक्तियाँ के रुप में लिखा जाता है।जैसे- “जब करोगे बालिका का सम्मान तभी होगा भारत महान””, “बाप बड़ा ना भैया सबसे बड़ा रुपया”

संवाद

संवाद - 'वाद' मूल शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाने से 'संवाद' शब्द बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'बातचीत' है। इसे वार्तालाप भी कहा जाता है। रूप से दो लोगों के बीच होने वाली बातचीत को संवाद कहा जाता है।

संवादों की महत्ता के संबंध में डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है, "संवाद अपने प्रकृतत्व औचित्य और व्यावहारिक रचना से ही अपने सौन्दर्य और आकर्षण को समझा देते हैं, उसमें तर्क-वितर्क, चिन्तन-मनन की उतनी अपेक्षा नही होती । .... संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा संबंध होता है। संवाद जहाँ एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वहीं चरित्र के उद्घाटन का भी, साथ ही देश काल का भी पर्याप्त बोध करा देता है।”

भावात्मक संवाद

भावात्मक संवाद कहानी की रोचकता में अभिवृद्धि करते हैं। मालती जोशी की 'शापित शैशव' कहानी में पारूल की सौतेली माँ भावुक होकर पारूल से कहती है कि "जायदाद का मुझे लोभ नहीं है। मुझे तो एक घर, एक जीवन-साथी की तलाश थी वह मुझे मिल गया। साथ ही एक प्यारी-सी बीटिया भी मिल गई। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। इत्मीनान रखो, मैं तुमसे तुम्हारे पापा का प्यार भी नहीं छीनूंगी, बल्कि मैं तो अपने हिस्से का प्यार भी तुम्हें देना चाहती हूँ।"

शैली

डॉक्टर गुलाब राय के अनुसार "शैली किसी भी रचना के अभिव्यक्ति के उन गुणों को लेखक अपने मन के प्रभाव को समान रूप से दूसरों तक पहुंचाने के लिए अपनाता है"।

आधुनिक युग में यह विद्या आम जनता तक भी प्रचलित हुई है। रचनाकर जब अपनी भावों को अभिव्यक्त करने के लिए विशेष पद्धति का सहारा लेता है, उसे शैली कहा जाता है। शैली को अँग्रेजी में 'स्टाइल' शब्द से संबोधित किया जाता है। डॉ. नगेद्र शैली को आधुनिक अर्थ मी जोड़ते हुए लिखते है- "अभिव्यक्ति के पद्धति के अर्थ में शैली का प्रयोग आधुनिक ही है जो अँग्रेजी 'स्टाइल' शब्द का पर्याय है।" पश्चात्य विद्वान डॉ. जे.ए कुड़न ने अपने ग्रंथ 'Literary terms and Literary Theory' में शैली को परिभाषित इस तरह करते है- “The
दूसरा उदारण “फोन नंबर क्यों लिया है...? क्या कहना चाहती है...? क्या पूछताछ करना चाहती है...? मौसी होने के नाते तो कोई मतलब ही नहीं उठता फोन करने का ...? फिर ऐसी क्या बातचीत करना चाहती है... ?

वर्णानात्मक शैली : इस शैली का प्रयोग हिन्दी कहानियों में आरंभ से होता आ रहा है। इस शैली में किसी भी पात्र या दृश्य का सरल या सीधे-सीधे ढंग से वर्णन किया जाता है। लेखिकाओं के कहानियों स्त्री की सुन्दरता , प्रकृति तथा घर के मोहोल का वर्णन दिखायी देता है। उदा बड़ा खूबसूरत गिलास था वह। रंगबिरंगे डिजाइन वाला प्लास्टिक का पारदर्शी गिलास - जिसकी दो तहों के बीच कैद नीले पानी में सुनहरे हरे फूल पत्ते और तैरती मछलियाँ थीं। गिलास गिरने से तड़क गया था और उसके भीतर की सारी खूबसूरती जमीन पर बड़ी बेरहमी से बिखरी पड़ी थी।

व्यंग्यात्मक शैली : इस शैली में व्यंग्य प्रमुख होता है। इसमे सामाजिक, राजनीतिक तथा धर्म आदि क्षत्रों के रूढ़िवादी आस्था एंव विश्वास पर ठीका व्यंग्य किया जाता है। उदा ; तो श्रीमानजी क्या अपने-आपको चंकी पांडे या आमीर खान की पीढ़ी का समझ रहे थे। खुद भी चालीस को छू रहे थे, पर उनका एक ही प्लस पाइंट था, और वह यह कि अब तक कुँवारे थे, और शायद इसीलिए किसी ज्योतिषी की आस लगाए बैठे थे।"

स्मृति प्रधान शैली : "याद आती है गर्मियों की एक शाम। हम लोग सड़क पर नदी पहाड़ खेल रहे थे। बड़ी बहनें अपनी सिलाई - कढ़ाई लेकर बरामदे में बैठी हुई थी। तभी दरवाजे पर एक ताँगा रूका और हम लोग विश्वास ही न कर पाये। ताँगे से दीदी उतर रही थीं साथ में जीजाजी भी थे।"

इतिवृत्तात्मक शैली : इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग रचनाकार सैकड़ों वर्षों से करते आये हैं जिसमें सामान्य विवेचन के आधार पर रचनाकार पात्रों के विकास कार्यों की झलक देता है। 'किस्सा जाम का' की प्राचीन कहानियाँ इतिवृत्तात्मक शैली की कहानियाँ रही हैं। रचनाकार जब जीवन परिवेश घटनाओं के माध्यम से पात्र के जन्म से लेकर उसके जीवन का विकास चित्रित करने के लिए विवेचन करता है वहाँ पर इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। नासिरा शर्मा ने ईरान की लोककथाओं एवं अन्य प्राचीन कहानियों में इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया है।

आत्मकथात्मक शैली : आत्मकथात्मक शैली में लेखक खुद कहानी की कथा सुनता है। कभी-कभी पत्रों के माध्यम से 'मैं' कह कर अपने विचार या भाव प्रकट करता है। “ लेखिकाओं के कहानियों मैं कहकर अपने विचार प्रकट किए गये है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः लेखिकाओं की कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से प्रभावपूर्ण है। उन्होंने प्रसंगानुकूल भाषा, शैली व संवाद के साथ-साथ वातावरण की सृष्टि भी बड़ी सहजता से की है। कहीं भी उनकी कहानियों में असहजता या अस्वाभाविकता नहीं लगती। शिल्प कला की दृष्टि से उन्होंने पाठकों पर अपना प्रभाव स्थापित किया है।

संदर्भ

सरावगी, अलका, दूसरी कहानी (सजिल्द). राधा कृष्ण प्रकाशन, 2002 पृष्ठ ४

अरोड़ा सुधा, मेरी प्रिय कथाएं, ज्योतिपर्व प्रकाशन , दिल्ली, 2012

सरावगी, अलका, कहानी की तलाश में, 2005 , राजकमल प्रकाशन पृष्ठ १०

नासिरा शर्मा, खुदा की वापसी, दिल्ली, 1998, पृ. 30,31.

अरोड़ा सुधा, महानगर की मैथिली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1987, पृष्ठ ७

अरोड़ा सुधा, कांसे का गिलास, पांच लंबी कहानियां - आधार प्रकाशन, पंचकूला ,हरियाणा, 2004, पृष्ठ १८

जोशी, मालती, लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन,1 जनवरी 2016, पृष्ठ ६

उपसंहार

समकालीन महिला लेखिकाओं की कहानियों का अध्ययन कर उसमें उपस्थित सामाजिक समस्याओं का ख़ुलासा किया गया है। समकालीन काल में अनेक महिला लेखिकाओं ने साहित्य रचा लेकिन कुछ ही लेखिकाओं का साहित्य प्रमुख रूप से दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सभी तरह की संकीर्णताओं और मान्यताओं को तोडकर सीधे-सीधे आम

आदमी से रिश्ता बनाने की कोशिश करती है। समकालीन कहानी अपनी व्यापक संवेदनशीलता के कारण जिस वृहत्तर मानव समाज से जुड़ती है , वह सामाजिक परिस्थितियों और अन्तर्विरोधों को पहचानने की कोशिया रही है।

समकालीन लेखिकाओं में प्रमुख हैं मृदुला गर्ग, ममता कालिया, दीप्ति खण्डेलवाल, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा, कुसुम अंसल, मृणाल पाण्डेय, मेहरुन्निसा परवेज़, निरुपमा सेवती, नासिरा शर्मा, गीतांजली श्री, अनामिका, अलका सरावगी, महुआ माजी आदि। यहाँ जिन महिला लेखिकाओं का उल्लेख छूट गया, उनका साहित्य भी अपने आप में महत्वपूर्ण है। इन सभी ने अपनी रचनाओं में सामाजिक मुद्दों को अपने कहानियों में उठाया है। सभी लेखिकाएँ अपने आप के साहित्य के माध्यम से मशहूर है लेकिन इस लघु शोध प्रबंध में सभी लेखिकाओं के साहित्य को प्रस्तुत करना मुश्किल था इसीलिए मैंने कुछ लेखिकाओं को चुनकर मेरे शोध विषय प्रस्तुत किया है।

सामाजिक समस्याएं उन मुद्दों को दर्शाती हैं जो समाज के भीतर व्यक्तियों, समूहों, या समुदायों को प्रभावित करते हैं। ये समस्याएं अक्सर जटिल होती हैं और इनके समाधान के लिए कई पहलुओं को समझने की आवश्यकता होती है। जैसे की गरीबी: यह एक प्रमुख समस्या है जिसमें लोगों के पास अपने जीवन की आवश्यकताओं को

पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं होते। अशिक्षा, शिक्षा की कमी के कारण लोग अपने जीवन में उन्नति करने में कठिनाई महसूस करते हैं, जो उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को प्रभावित करता है। स्वास्थ्य सेवाओं की कमी: अच्छे स्वास्थ्य की कमी से लोग समाज में अपनी भूमिका को पूर्ण रूप से निभा नहीं पाते। लिंग भेदभाव, यह समस्या समाज में महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानता से संबंधित है। नस्लवाद और जातिवाद, इनसे संबंधित भेदभाव और असमानता कई समाजों में मौजूद है। बेरोजगारी, यह सामाजिक अस्थिरता का एक बड़ा कारण है, जो अपराध और गरीबी को भी बढ़ावा देता है।पर्यावरणीय समस्याएं प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, और प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग समाज और पृथ्वी को प्रभावित करते हैं। अपराध और हिंसा: समाज में अपराध और हिंसा की घटनाएं लोगों की सुरक्षा और स्थिरता को प्रभावित करती हैं। भ्रष्टाचार, सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों में भ्रष्टाचार से जनता का विश्वास कमजोर होता है।आदि समस्याएं दिखाई देती है। जो की लेखिकाओं के कहानियों में मौजूद है।

लेखिकाओं की कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से प्रभावपूर्ण है। उन्होंने प्रसंगानुकूल भाषा, शैली व संवाद के साथ-साथ वातावरण की सृष्टि भी बड़ी सहजता से की है। कहीं भी उनकी कहानियों में असहजता या अस्वाभाविकता नहीं लगती। शिल्प कला की दृष्टि से उन्होंने पाठकों पर अपना प्रभाव स्थापित किया है।

इस लघु शोध प्रबंध का एकमात्र उद्देश्य यह रहा है की पाठक महिला लेखिकाओं के साहित्य को केवल स्त्री व्यथा की दृष्टि से न देखकर उसमें जो अन्य समस्याएँ है उन्हें भी केंद्रित किया गया है तथा आज भी किस पकार यह समस्याएँ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में समाज में फैली है और लोग उन्हें किस प्रकार नज़रअंदाज़ करते है यह समझ आता है। आगे भी ऐसी अनेक समस्याएं होंगी जिनका अंत कभीं न कभी तो ज़रूर होगा ऐसी आशा है।

संदर्भ सूची

सहायक ग्रंथ

आहूजा राम, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन, 1 जनवरी 2016, तृतीय संस्करण पृष्ठ 25,27

तेज,संगीता पाण्डेय तेजस्कर समाज कार्य, जूविली फण्डामेन्टल लखनऊ, वर्ष 2012, पृष्ठ 34

सिंह जीत कृष्ण, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, वर्ष 2006, पृष्ठ 163

सिंह, डॉ. पुष्पपाल, समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, दिल्ली नेशनल प्रकाशन,1986 , पृष्ठ 55

बाला,डॉ.किरण,समकालीन हिंदी कहानी और समाजवादी चेतना,कानपुर अनुभव प्रकाशन, 1988, पृष्ठ 7

पाण्डेय, श्यामसुन्दर, समकालीन हिंदी कहानी सरोकार और विमर्श, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, 2014 पृष्ठ 36

मदान, डॉ. इंद्रनाथ, हिन्दी कहानी पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 170

मधुरेश,हिंदी कहानी: अस्मिता की तलाश, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2005, पृष्ठ 56

विमल, गंगा प्रसाद, समकालीन कहानी का रचना विधान, सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, 1967 , पृष्ठ 31

आधार ग्रंथ

अरोड़ा सुधा, औरत की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, वर्ष 2008

अरोड़ा सुधा, काला शुक्रवार, राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013

सरावगी अलका, दूसरी कहानी, राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2003

सारावगी अलका, कहानी की तलाश में, राजकमल प्रकाशन, 2005

जोशी मालती, बोल री कठपुतली किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम 1998

शर्मा नसीरा, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली

अंसल, कुसुम, कुसुम अंसल की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, 1 जनवरी 2017